आवाज़ सुरीली कैसे करें ?

How to make Voice Melodious

लेखक—

लक्ष्मीनारायण गर्ग

प्रकाशक—

संगीत कार्यालय

हाथरस (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण
सितम्बर १९५५

मूल्य

२) रुपया

Printed by [illegible] S. Verma at the SANGEET PRESS HATHRAS and
Published by P. L. Garg Sangeet Karyalaya HATHRAS (INDIA)

साधकों की प्रोक्तियां

—जिसकी आवाज़ में माधुर्य नहीं वह मानव और पशुओं से परे निर्मित कोई पिशाच है। —बर्नार्ड शॉ

—जिसके गायन में रस नहीं वह डायन है। —माताहारी

—मेरी प्रेयसी कितनी भी भोंडी या बदसूरत हो, कोई परवाह नहीं; किन्तु उसकी आवाज़ में रस होना चाहिये।
—लिंकनग्राही

—असली मजा तो सुर में ही है। —उ० अलाउद्दीन खां

—प्रथम सुर साधे, फिर बैठ गुनिन में रस की करे फुहार।
—तानसेन

—स्वर ही सुर (देवता) है और अस्वर ही असुर (राक्षस) है
—बिन्दु जी

—जहाँ सङ्गीत सुरीला होता है, वहां मैं अपने को खो बैठती हूं। —लता मंगेशकर

—स्वर के प्रभाव से हिंसक शेर को मैंने ऐसा मुग्ध कर दिया था कि, उसकी आंखों से कुत्ते जैसी मोहब्बत टपकने लगी थी। —ओम्कारनाथ ठाकुर

सुर की ठोकर खाकर पत्थर भी पानी हो सकता है।
—बिसमिल्लाह खां

—कम से कम दो वर्ष तक खरज साधन करके स्वर ठीक करें तत्पश्चात् आगे बढ़ें। —[illegible] खाँ

—सुर की मार बड़ी विकट होती है।

—उस्ताद अमीर खाँ

—स्वर में जादू पैदा करो, तब पशु पक्षी मुग्ध होंगे।

—स्वामी हरिदास

—तान बिगड़ जाय तो कोई बात नहीं है, स्वर न बिगड़ने पावे। —दत्तात्रय विष्णु पलुस्कर

—स्वर, काले और बदसूरत आदमी को भी सुन्दर बना देता है। —[illegible]

—मेरी बीमारी सुरीले संगीत से जितनी जल्द दूर हो सकती है, उतनी किसी औषधि से भी नहीं हो पाती।

—महात्मा गांधी

—एक पादरी में कुछ भी खराबियाँ हों, पर उसकी वाणी मधुर व प्रभावशाली हो। —[illegible]

माँ !

तुम्हारे ही कोमल और मधुर स्वर से मुझे इस पुस्तक को ने की प्रेरणा मिली और अब तुम्हारे ही लिये यह समर्पित है—

तुम्हारा
लल्ला

आमुख

प्रारम्भ से ही भारतीय सङ्गीत का प्रमुख आकर्षण स्वर-सौन्दर्य रहा है। आज भी स्वर की प्रतिभा जितनी श्रेष्ठ और निर्मल भारतीय गायकों में पाई जाती है उतनी अन्य विदेशी गायकों में दृष्टिगोचर नहीं होती। फिर भी आश्चर्य की बात है कि हमारे विद्वानों ने अपनी भाषा में अभी तक कोई एक भी ऐसी पुस्तक नहीं लिखी, जिसमें स्वर और उसके सौंदर्य के विषय पर प्रकाश डाला गया हो, जबकि अन्य विदेशी लेखकों ने इस विषय पर काफ़ी लिखा है।

अभी हमारे राष्ट्र को स्वतन्त्र हुए थोड़ा ही समय हुआ है, फिर भी इस अल्प अवधि में कला और संस्कृति का जिस गति से विकास हुआ है अथवा हो रहा है, उसे हम संतोषजनक कह सकते हैं। वह कला जो थोड़े दिनों पूर्व ही जागीरदारों, राजा-नवाबों और आला अफसरों की चहारदीवारियों तक सीमित रह गई थी आज जनसाधारण को भी सरलता से उपलब्ध हो सकती है। प्रगति के इस युग में हमारा सङ्गीत भी आशाजनक अभिवृद्धि की ओर है, इसमें सन्देह नहीं। शिक्षा संस्थाओं, आकाशवाणी-केन्द्रों एवं समय-समय पर होने वाले सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय आयोजनों में सङ्गीत को अधिकाधिक महत्व दिया जाने लगा है। फल स्वरूप देश के सभी भागों में सङ्गीत का प्रचार और प्रसार द्रुत गति से हो रहा है। प्रति वर्ष सहस्रों विद्यार्थी सङ्गीत की विभिन्न परीक्षाओं को उत्तीर्ण करते हैं। उनमें से बहुत बड़ी संख्या में, येन-केन-प्रकारेण सङ्गीत के प्रचार का साधन ही बन जाते हैं; चाहे स्कूलों में सङ्गीत अध्यापक बनकर अथवा प्राइवेट म्यूज़िक मास्टर बनकर। ऐसे व्यक्ति जीविकोपार्जन करते हुए

अपने सीमित दायरे में ही घूमते रहते हैं। चूँकि वह सङ्गीत शिक्षक हैं और सङ्गीत की शिक्षा देते हैं, इसलिये उन्हें कलासेवी कहना ही चाहिये। चूँकि उन्होंने परिश्रम करके सङ्गीत की डिगरियाँ हासिल की हैं अतः उन्हें कलाकार की पदवी भी मिलनी ही चाहिये और मिल भी जाती है। इस प्रकार हमारे इन नवोदित कलाकारों के दोनों ही स्वप्न पूरे हो जाते हैं और वे अपनी *वर्तमान परिस्थितियों में ही, अधिक से अधिक स्थानीय ख्याति प्राप्त* गायक बनकर, अपने विकास की चरम सीमा अनुभव कर बैठते हैं।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि कला-पुजारियों की इतनी बड़ी संख्या होते हुए भी चमत्कारी गायक मुश्किल से कोई एक ही निकल पाता है, ऐसा क्यों? इस प्रश्न के सही उत्तर के लिये हमें अपने इतिहास के पृष्ठों को उस दौर तक पलटना होगा जबकि हमारे देश में तानसेन, बैजू, स्वामी हरिदास, गोपाल नायक आदि जैसे चमत्कारी गायक थे। इन विभूतियों की जीवनियों का ध्यानपूर्वक मनन करके इन तथ्यों की खोज करनी पड़ेगी कि इन्होंने कितने दिनों तक शिक्षा ग्रहण की, कितने दिनों तक रियाज किया और कितने समय तक स्वराभ्यास किया? इन्होंने अपने अध्ययन काल की कितनी अवधि सप्त स्वरों को अपने कंठ से ठीक-ठीक निकालने में व्यय करदी और कितना समय इन स्वरों को खूबसूरत बनाने में लगाया? तब कहीं जाकर यह कहावत चरितार्थ हुई—'धरा-मेरु सब डोलते तानसेन की तान।'

वास्तव में चमत्कार शब्द कोई जादू की पिटारी से नहीं निकला; यह एक परिश्रम साध्य वस्तु है जिसे कोई भी कर्मनिष्ठ व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। यदि आपके पास 'स्वर चमत्कार' नहीं है तो उसे नियम, संयम से चलकर, दैनिक स्वराभ्यास द्वारा आप भी प्राप्त कर सकते हैं। श्रेष्ठ गायक बनने के लिये स्वर-सौंदर्य

ी ओर ध्यान देना परम आवश्यक है। किसी-किसी व्यक्ति को
वर का तोहफ़ा ईश्वर की ओर से प्राप्त होता है; वास्तव में ऐसे
यक्तियों को भाग्यशाली ही कहना पड़ेगा। ऐसा होने पर भी, यदि
े व्यक्ति अपने स्वर-सौंदर्य के प्रति उपेक्षा की नीति का प्रयोग
करते हैं तो उनकी यह ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा भी एक दिन अवश्य
ी अन्धकार में विलीन हो जाती है। इसके अतिरिक्त यदि वह
अपने स्वर-सौन्दर्य की रक्षा करते हुए निरन्तर उसकी अभिवृद्धि
का प्रयत्न करते हैं तो सोने में सुगन्ध पैदा हो जाती है।

जिस प्रकार व्यक्तित्व को आकर्षक बनाये रखने के लिये लोगों
ें शारीरिक सौन्दर्य वृद्धि की लालसा विद्यमान रहती है और वे
केसी भी क़ीमत पर अपनी खूबसूरती पर आँच नहीं आने देते;
इसी प्रकार प्रत्येक गायक और वक्ता को भी यही हार्दिक इच्छा
रहती है कि उसकी आवाज़ मधुर और आकर्षक होजाय। अन्तर
दोनों में केवल इतना है कि शारीरिक सौंदर्य के जिज्ञासु क्रियात्मक
उपायों एवं उपलब्ध साधनों द्वारा अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त
करते-रहते हैं और स्वर-सौन्दर्य के जिज्ञासु इसे ईश्वरीय देन
समझकर न तो स्वर सौन्दर्य वृद्धि के साधन ही जुटा पाते हैं और
न किसी के बताये हुए उपायों को ही क्रियात्मक रूप देने का
उन्हें अवकाश मिल पाता है अतः वे जहां से चले थे वहीं
आकर रुक जाते हैं। मतलब यह है कि वे अपनी आवाज़ को
जितनी रंजक और प्रभावपूर्ण बना सकते थे उतनी बना नहीं पाते।
इसलिये प्रत्येक गायक, वक्ता अथवा गायन के विद्यार्थी का प्रथम
कर्तव्य है कि वह प्रत्येक स्थिति में अपने स्वर सौंदर्य की रक्षा
करते हुए निरन्तर उसकी वृद्धि के लिये प्रयत्नशील रहे।

ग्रीक निवासी वाणी के विकास को बहुत अधिक महत्व
देते थे और भाषण देने के इच्छुक व्यक्तियों को तीन विशेषज्ञों के

आधीन रक्खा जाता था। पहिला अध्यापक वाणी का विकास कराता था, दूसरा स्वरभेद दूर कराता और तीसरा वाणी की विभक्ति और उसके उतार-चढ़ाव को ठीक कराता था।

मानव स्वरयंत्र को विकसित करने के लिये ऐसा कोई भी उपकरण नहीं जो बिना स्वर साधना के इसका पूर्ण रूप से विकास कर सके। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या संसार में कोई ऐसी भी ध्वनि है जिसको मानव उत्पन्न नहीं कर सकता ? पक्षियों का कलरव, पशुओं का दहाड़ना, कीड़े-मकोड़ों का गुंजन, किसी वाद्य यन्त्र की ध्वनि, हवा की सरसराहट और पानी का कल-कल नाद आदि किसी भी ध्वनि को अत्यन्त बुद्धिमत्ता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है, इसलिये यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि मानव स्वर यन्त्र किसी भी ध्वनि को सरलता के साथ प्रकट करने में पूर्ण समर्थ है ! आवश्यकता इसी बात की है कि स्वर यन्त्र का विकास कर भाव प्रदर्शन में सावधानी रक्खी जाय। स्वर यन्त्र, वाद्य यन्त्र की तरह सीमित नहीं है, बल्कि एक ही स्वर पर नाद की ऊँचाई-नीचाई बिना बदले हुए उसमें कितने ही परिवर्तन किये जा सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में स्वर के समस्त अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है। जिन लोगों की आवाज़ मधुर अथवा कर्णप्रिय नहीं है, उन्हें अपनी सुविधानुसार इस पुस्तक में से कुछ आसान प्रयोग चुन लेने चाहिये और उनका नियमित रूप से क्रियात्मक अभ्यास करना चाहिये। लेखक का विश्वास है कि उन लोगों को निराश नहीं होना पड़ेगा। यदि उन्होंने सब्र और विश्वास से काम लिया तो एक दिन वे निश्चयात्मक रूप से अपने स्वर को माधुर्य और आकर्षण से परिपूर्ण पायेंगे।

—लेखक

अनुक्रमणिका

++++++++

आवाज़ सुरीली कैसे करें

?

स्वर का महत्व

मनुष्य को प्रकृति द्वारा प्राप्त निधियों में वाणी प्रमुख है। वाणी विचारों का वाहन और मनुष्य के समाजीकरण को आगे बढ़ाने का प्रमुख साधन है। आज हम वाणी के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि हम प्रायः ही वाणी की महत्ता को भूल जाते हैं। इसके अलावा आज मनुष्य को ऐसे साधन भी उपलब्ध हैं जो वाणी का स्थान ग्रहण कर सकते हैं। इनमें सबसे प्रमुख है लिखित भाषा। आज के युग में जब लिखित भाषा ने वाणी की महत्ता को छीन लिया है, हमें वाणी के महत्व को समझने में कठिनाई होना स्वाभाविक है। आज यह सम्भव हो गया है कि एक गूंगा मनुष्य भी लेखनी द्वारा अपने विचारों को व्यक्त कर सके, किन्तु मानव इतिहास में एक ऐसा भी युग था जब मनुष्य के पास वाणी न थी। वह अपने चारों ओर बिखरी हुई प्रकृति की ही भांति मूक था और अपने विचारों, संवेदनाओं तथा भावनाओं को अभिव्यक्ति देने में असमर्थ।

उस युग की कल्पना कीजिये जब मनुष्य के पास स्वर न था और फलस्वरूप भाषा भी न थी, उसके चारों ओर फैले अन्य प्राणी अपनी कुछ भावनाओं—जैसे भय, कामेच्छा, हर्ष, भूख आदि को कंठ द्वारा भिन्न प्रकार के स्वर निकाल कर व्यक्त कर सकते थे, किन्तु मानव प्राणी मूक था।

उस काल में मानव समाज यूथों (गिरोहों) में बंटा हुआ था और ये यूथ सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे। भाषा शास्त्रियों में स्वर की उत्पत्ति के प्रश्न को लेकर मतभेद हैं। भाषा शास्त्रियों का मत है कि वाणी अथवा भाषा की उत्पत्ति श्रम से हुई है। इनके अनुसार जिस युग में भाषा का जन्म हुआ उस समय तक मनुष्य खेती करने लगा था। खेती में सामूहिक श्रम की आवश्यकता थी, सामूहिक रूप से भारी श्रम करते हुए ही मनुष्य के कंठ से स्वर की उत्पत्ति हुई जिसे शनैः शनैः उसने भाषा के रूप में ढाल लिया, उसने अनुभव किया कि काम करते समय कंठ से विभिन्न स्वर निकालते रहने पर काम में आसानी हो जाती है। मानव-समाज की इसी अवस्था में लोक सङ्गीत ने जन्म लिया, आज भी आप देखते हैं कि सड़क पर भारी बोझ ढोते समय मजदूर एक साथ मिल कर कुछ आवाजें करते हैं, काम करते समय सामूहिक रूप से गाने की प्रथा प्रायः तमाम देशों में आज भी विद्यमान है।

दूसरे मत के अनुसार मनुष्य ने पशु-पक्षियों की नकल करने की चेष्टा करते हुए अपने कंठ से स्वर को निकाला, इन दो मतों में अधिक भेद नहीं जान पड़ता क्यों कि चेष्टा स्वयं श्रम का ही एक रूप है।

इन दो मतों के अतिरिक्त स्वर और भाषा की उत्पत्ति के अनेक सिद्धान्त हैं किन्तु इस बहस में पड़ना प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। हम इस सिद्धान्त को मानकर चलेंगे कि वाणी की

उत्पत्ति का मूल चेष्टा तथा श्रम में है। यह सिद्धान्त आगे चलकर कला के प्रति हमारे दृष्टिकोण को सही मार्ग पर लाने में सहायक होगा।

आगे चलकर वाणी अथवा स्वर ने भाषा का रूप लिया भाषा कविता बनी और एक दिन मनुष्य ने अपने स्वर को इतना विकसित कर लिया कि वह उस कविता को स्वर के आश्चर्यजनक उतार चढ़ाव के साथ गाने लगा। ज्यों-ज्यों मनुष्य विकास करता गया उसका स्वर परिमार्जित होता गया और वह भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियां कंठ से निकालने में सफल होता गया तथा एक दिन मस्तिष्क की प्रक्रियाओं को स्वर के माध्यम से भाषा का रूप दे सका, एक बार उसके विचारों को यह राह मिल जाने पर वह इस दिशा में निरन्तर आगे बढ़ता रहा, उसकी विभिन्न इन्द्रियों में अधिकाधिक सामंजस्य और संतुलन कायम होता रहा।

एक ओर गले से भिन्न-भिन्न स्वर निकलने की उसकी क्षमता बढ़ती गई, दूसरी ओर उसकी श्रवण शक्ति भी विकसित होती रही, और एक दिन विकास की एक स्थिति पर आकर उसे आभास हुआ कि मनुष्य के स्वर में ऐसी ध्वनियां भी हैं जो सुनने में भली मालूम होती हैं। (सङ्गीत की भाषा में इन ध्वनियों को जो सुनी जा सकती हैं आहत नाद कहते हैं।) वह भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियों के अन्तर को भी समझने लगा। यही सङ्गीत का जन्म-काल है।

मनुष्य और पशु-पक्षियों में यह अन्तर है कि पशु-पक्षी सदियों से एक ही तरह की आवाजें करते आ रहे हैं जब कि मनुष्य ने अपने स्वर का निरन्तर विकास किया है, उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ढाला है। आज हमारी श्रवण शक्ति तथा वाणी इतनी विकसित हो गई है कि हम किसी वाद्य पर छेड़ी जाने वाली विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म से सूक्ष्म धुनों का भी आनन्द उठा सकते हैं जो कि हमारे आदि पुरुष के लिए एक भय उत्पन्न करने वाले शोर से कम न होता। कंठ से इतनी विभिन्न ध्वनियां निकाल सकते हैं तथा स्वर को इस प्रकार उतार चढ़ा सकते हैं जो न सिर्फ हमारे आदि पुरुषों के लिए असम्भव ही था बल्कि वे इसकी कल्पना भी न कर सकते थे।

प्रारम्भ में बताया गया है कि मनुष्य के समाजीकरण में भाषा का अत्यधिक महत्व है, इसे ठीक–ठीक समझ लेने पर हम मानव समाज के इतिहास में स्वर की भूमिका और महत्व को समझ पायेंगे। मानव समाज को संगठित करने में जितना महत्व उत्पादन के साधनों का है उससे कम भाषा का नहीं है।

आज समाचार पत्रों तथा पुस्तकों के इस युग में वाणी का महत्व समझना कठिन है। किन्तु प्रत्येक देश की पौराणिक गाथाओं का अध्ययन करने पर यह बात भली भांति समझ में आ जायेगी कि प्राचीन काल में बोले हुए शब्द में बड़ी शक्ति थी। शास्त्रों में कहा गया है कि विचारों और कर्म पर वाणी का अधिकार है, हमारे देश में जोर–जोर से मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है और

आज भी यह विश्वास बना हुआ है कि मुँह से निकले हुए उन शब्दों में बड़ी शक्ति रहती है।

× × × ×

किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि हम प्रायः ही इस महान निधि का दुरुपयोग करते हैं। हम यह मान बैठते हैं कि हमें जो वाणी अथवा स्वर प्राप्त हुआ है, हमें न उसका विकास करने की आवश्यकता है और न ही हम ऐसा कर सकते हैं। शरीर को सुडौल बनाने के लिए हम व्यायाम करते हैं………हजारों लाखों रुपया प्रतिवर्ष हमारे बाहरी बनाव के उपकरणों पर खर्च हो जाता है किन्तु हम अपने स्वर को आकर्षक अथवा प्रभाव पूर्ण बनाने का प्रयास नहीं करते। प्रकृति से हमें जैसा भी स्वर प्राप्त हो जाता है, उसी से काम चला लेते हैं। न उसे सुधारने की चेष्टा करते हैं और न उसके बिगड़ जाने की ही परवाह करते हैं। यही कारण है कि बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो बिना किसी अभ्यास के अपनी आवाज का ठीक-ठीक प्रयोग कर पाते हैं।

दुर्भाग्यवश पढ़े लिखे लोग भी यह समझ बैठते हैं कि गाना बजाना सिर्फ पेशेवर गायकों का ही काम है। आज के यांत्रिक युग में जब कि लोग स्वयं सङ्गीत का निर्माण करने के स्थान पर धन देकर उसे खरीद लेते हैं… …शब्दों को बोलने के स्थान पर उन्हें पढ़ लेते हैं यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि मनुष्य के सजीव सङ्गीत की परम आवश्यकता पर जोर दिया जाय। हमें

यह नहीं समझना चाहिए कि यदि हम में सांगीतिक प्रतिभा नहीं है तो हमें अपना मुँह ही नहीं खोलना चाहिए। हमें एक साथ मिलकर नाचना-गाना चाहिए, क्योंकि न सिर्फ ऐसा करने की आवश्यकता है बल्कि हम ऐसा करना चाहते भी हैं। हम ऐसा कुशलता से कर पाते हैं या नहीं यह गौण बात है। चुप रहने से बेहतर है हम गाकर मनोरंजन करें और हम ऐसा ठीक से कर पायें तो फिर तो सोने में सुहागा हो जायेगा। यह क्या जरूरी है कि सभी उस्ताद बनें लेकिन यह जरूरी है कि गाकर सभी अपना और हो सके तो दूसरों का जी बहला सकें।

आवाज का अच्छा होना न सिर्फ एक गायक, अभिनेता तथा वक्ता ही के लिए जरूरी है बल्कि सभी के लिए नितान्त आवश्यक है। हमारी आवाज हमारे व्यक्तित्व का अभिन्न अङ्ग है। हमारे व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने में जितना हाथ बुद्धिमता, चरित्र, वाक्पटुता, आकृति, वेशभूषा तथा व्यवहार का रहता है उतना ही स्वर का भी रहता है। आपने प्रायः देखा होगा कि आप किसी सुन्दर स्त्री या पुरुष के सौन्दर्य से प्रभावित और मुग्ध हैं किन्तु उसके रूप का सारा प्रभाव उसी क्षण समाप्त हो जाता है जब आप उसके मुख से निकली हुई भद्दी आवाज सुनते हैं। आपका एक स्वप्न सा अचानक भंग हो जाता है, इसी प्रकार किसी कुरूप व्यक्ति की मधुर आवाज सुनकर आप उसकी ओर खिंचे बिना नहीं रह सकते। किसी-किसी व्यक्ति की आवाज इतनी भद्दी होती है कि उस पर हँसी आये बिना नहीं रहती।

आवाज का मनुष्य के स्वास्थ्य से तो गहरा सम्बन्ध है किन्तु डील-डौल अथवा आकार से नहीं है। किसी मोटे और कुरूप व्यक्ति की आवाज मधुर हो सकती है और किसी सुन्दर स्त्री अथवा पुरुष की कर्कश, कर्णकटु तथा अप्रिय हो सकती है। उदाहरण के लिए सङ्गीत प्रेमियों को दूर जाने की जरूरत नहीं है। आधुनिक कलाकार उस्ताद बड़े गुलाम अली को देखकर कोई भी व्यक्ति यह कल्पना नहीं कर सकता कि पहाड़ सदृश्य इस भारी भरकम व्यक्ति की इतनी कोमल और मधुर आवाज भी हो सकती है।

मेरे एक मित्र हैं उनका डील-डौल हाथी के बच्चे से किसी प्रकार भी कम नहीं है। उनके चेहरे से दबदबा टपकता है, उनके सामने आकर मनुष्य अनायास ही सहम जाता है। उनके चेहरे और आकार का दूसरे व्यक्ति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है किन्तु जब वे बोलते हैं तो कुछ देर तो आपको यकीन ही नहीं आयेगा कि चूहे के चुँचाने की सी जो आवाज आ रही है वह उन्हीं के कंठ से आरही है। उनका सारा दबदबा काफूर हो जाता है और दूसरे व्यक्ति को हंसी रोके नहीं रुक पाती। मेरे वे मित्र इतने दुखी थे कि उन्होंने बोलना बिलकुल ही कम कर दिया और प्रायः चुप रहा करते थे। केवल एक अर्से तक एकान्त में Voice culture (स्वर साधना) करके ही वे मनुष्योचित स्वर पा सके।

इसके विपरीत इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जब किसी व्यक्ति ने अपने स्वर की मधुरता के कारण असाधारण सफलता प्राप्त की हो। तेरहवीं शताब्दि में फ्रांस के राजा के

दरवार में एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख मिलता है जिसे युद्ध रोकने के लिए आक्रमणकारी राजा के पास दूत बनाकर भेजा गया था, उस व्यक्ति का स्वर इतना मधुर था कि लोग बड़ी जल्दी उसकी ओर खिंच जाते थे और वह उनका प्रिय पात्र हो जाता था। आक्रमणकारी राजा पर उसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह इस शर्त पर मोर्चा उठाने के लिये तैयार होगया कि वह व्यक्ति हमेशा के लिए फ्रांस का दूत बनकर उसके दरवार में रहे।

यदि आपका स्वर मधुर है और आप उसका उचित प्रयोग करते हैं तो आप जीवन में आसानी से सफल हो सकते हैं। किसी भी व्यक्ति के सामने जब आप पहुँचते हैं तो उस व्यक्ति पर पहला प्रभाव आपकी आकृति और वेशभूषा का पड़ता है फिर आपकी बातचीत का। यदि आपका स्वर मधुर है तो आपकी बातचीत के सफल होने की अधिक सम्भावना है। जीवन में सफल होने के लिए समस्त गुणों का सम्यक विकास आवश्यक है। जीवन के प्रत्येक पग पर आपके गुण–दोष ही आपकी सफलता–असफलता को निश्चित करते हैं।

गायक, वक्ता और अभिनेता विना स्वर साधना के कभी सफल नहीं हो सकते। उनकी कला का आधार ही स्वर है। जितना ही स्वर पर उनका अधिकार होगा उतना ही अधिक वे अपने–अपने क्षेत्र में सफल होंगे। यह समझना भूल है कि स्वर को वनाया–विगाड़ा नहीं जा सकता, जिस प्रकार अभ्यास (Voice culture) द्वारा आवाज़ को मधुर बनाया जा सकता है तथा

इस पर काबू पाया जा सकता है उसी प्रकार आवाज लापरवाही से बिगड़ भी जाती है। आम आदमी इस भ्रम का शिकार होते हैं कि सब की आवाज प्राकृतिक रूप में खराब होती है और केवल वर्षों के विशेष अभ्यास द्वारा ही उसे साधा जा सकता है। यह मान कर हम अपनी आवाज की तरफ कोई जिम्मेदारी महसूस नहीं करते और हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाते हैं। फलस्वरूप आवाज का निरन्तर दुरुपयोग करते चले जाते हैं। ऐसा करने से न सिर्फ हमें ही नुकसान पहुंचता है बल्कि सुनने वालों को भी कष्ट होता है। यदि आप सुनने वालों से पूछें तो आपको ज्ञात होगा कि या तो आपकी आवाज फटी-फटी सी है या आप जरूरत से ज्यादा जोर से बोलते हैं, आपकी आवाज या तो बहुत बारीक है या इतनी भारी है कि कानों को अच्छी नहीं लगती, उसमें लोच की कमी है, एक रस है अथवा उसमें विचित्र उतार चढ़ाव है। ऐसा बहुत कम होता है कि बिना अभ्यास के या बिना सावधानी बर्ते आवाज मधुर बनाई जा सके। जन्म से भले ही बहुत से लोगों को आवाज मधुर रही हो किन्तु प्रायः लापरवाही से उनकी आवाज भी खराब हो जाती है। यह लापरवाही बहुत बढ़ जाने पर प्रायः यह भी देखा है कि बहुत से लोगों की आवाज हमेशा के लिए लुप्त हो जाती है, उनका गला हमेशा बैठा रहता है और आवाज़ कभी साफ नहीं आ पाती।

यह सच है कि साधारण तौर पर आवाज़ इतनी खराब नहीं हो जाती किन्तु फिर भी यदि हम ध्यान पूर्वक लोगों की आवाज

का विश्लेषण करें तो सौ में केवल १० व्यक्तियों की आवाज हमें संतोषजनक प्रतीत होगी।

स्वर साधना के जरिये हम न सिर्फ आवाज को बिगड़ने ही से रोक सकते हैं बल्कि उसे सुन्दर तथा मधुर भी बना सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में जो प्रयोग तथा खोजपूर्ण तथ्य दिये गये हैं वे न सिर्फ भावी गायक, अभिनेता अथवा वक्ता ही के लिए आवश्यक और लाभदायक हैं बल्कि कोई भी आदमी उन पर अमल करके अपनी आवाज को सुन्दर बना सकता है। आवाज अच्छी होने पर आप न सिर्फ एक सफल गायक, अभिनेता, वक्ता और रेडियो एनाउन्सर ही हो सकते हैं बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में आपका मधुर स्वर आपको मदद पहुँचायेगा।

पश्चिमी देशों में स्वर साधना (Voice Culture) वैज्ञानिक पद्धति पर की जाती है। प्रत्येक बड़े नगर में स्वर साधना केन्द्र बने हुए हैं जहां अपनी आवाज को ठीक करने के इच्छुक व्यक्ति अपने दिन भर के काम से निबटकर संध्या समय विशेषज्ञों के निरीक्षण और निर्देशन में स्वर साधना करते हैं। संगीत के अध्यापकों से मेरा अनुरोध है कि वे स्वर ज्ञान कराने के पूर्व प्रत्येक विद्यार्थी को स्वर साधना करायें। उनके सामने स्वर्गीय श्री विष्णु दिगम्बर और सवाई गन्धर्व के उदाहरण पेश करें जिनके पास कि आवाज की ईश्वरीय देन न थी किन्तु उनकी निरन्तर साधना ही ने उन्हें महान् गायकों की श्रेणी में स्थान दिया।

स्वर साधना के विषय में कुछ आवश्यक जानकारी

स्वर का सम्बन्ध अन्य अवयवों की भांति ही हमारी प्रकृति अथवा स्वभाव से होता है। हमारा स्वभाव कैसा है इसका हमारे स्वर पर प्रभाव पड़ता है ! आपने देखा होगा क्रोधी और चिड़चिड़े स्वभाव वाले व्यक्तियों का स्वर प्राय: कर्कश और अप्रिय होता है। इसके विपरीत सहृदय व्यक्तियों का आमतौर से मधुर। हमारे स्वर का हमारे स्नायुओं से गहरा सम्बन्ध है। भिन्न-भिन्न भावों में हमारा स्वर भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। अत्यन्त भय के मारे आवाज नहीं निकलती ·· ··· शर्म के मारे आवाज छटपटाती है···करुणा के मारे गला भर आता है आवाज रुंध जाती है··· · क्रोध में जबान लड़खड़ाने लगती है ····और उन्माद में आवाज भारी पड़ जाती है। वे लोग जिन्होंने स्वर साधना या किसी अन्य प्रकार की साधना की है, जानते हैं कि ऐसे अभ्यास का स्वभाव पर गहरा असर पड़ता है। इसके विपरीत मानसिक रोगियों को प्राय: मनोवैज्ञानिक किसी न किसी प्रकार का अभ्यास करने को कहते हैं।

आदर्श रूप में हमारा व्यक्तित्व पूर्ण रूपेण संतुलित होना चाहिये, किन्तु अभी हम यह स्थिति प्राप्त नहीं कर पाये हैं। स्वर साधना इस स्थिति को प्राप्त करने का एक मार्ग है।

स्वर साधना की पहली सीढ़ी है अपने स्नायुओं पर अधिकार प्राप्त करना अर्थात् इच्छा शक्ति को बढ़ाना। (स्वर को सुन्दर बनाने में कौन से मनोवैज्ञानिक अभ्यास सहायता पहुँचाते हैं यह आगे बताया गया है।)

प्रत्येक कला अनुशासन का ही चरम रूप होती है.............. "All art is discipline" अतएव स्वर साधना के लिए एक मानसिक और शारीरिक अनुशासन की अपेक्षा है। अनुशासन की इस सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करने के लिए निरन्तर धैर्यपूर्वक अभ्यास करते रहने की जरूरत है।

स्वर साधना की दूसरी सीढ़ी है एकाग्र श्रवण। दूसरों के तथा अपने स्वर को सुनना। गायकों, अभिनेताओं और वक्ताओं के लिए इसका विशेष महत्व है। बिना स्वर और ध्वनियों की सूक्ष्म पहचान करने की क्षमता प्राप्त किये कोई भी व्यक्ति अच्छा गायक नहीं हो सकता। अच्छा गायक होने के लिये अच्छे कान होने आवश्यक हैं जो ध्वनियों के सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर को भी जान सकें। अभ्यास द्वारा यह किया जा सकता है।

यहां कुछ सुझाव पेश किये जा रहे हैं:—

१—एकान्त बन्द कमरे में बैठकर अपने कानों में अच्छी तरह रुई ठूंस लीजिये, फिर आंखें बन्द करके बोलिये या गाइये और अच्छी तरह ध्यान पूर्वक अपनी आवाज सुनने का प्रयत्न कीजिए, धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा आप अपनी आवाज को पहचानने लगेंगे

अच्छी आवाज से तुलना करने पर उसके गुण दोषों से परिचित हो जायेंगे। कुछ दिन बाद आप बिना कानों में रुई डाले अथवा आंखें बन्द किये भी अपनी आवाज पर अपना समस्त ध्यान केन्द्रित कर सकेंगे। इस अभ्यास द्वारा आप अपनी आवाज के गुण दोषों से भली भांति परिचित हो जायेंगे और फिर उसी के अनुसार आगे के अभ्यास कर सकेंगे।

२—किसी एकान्त में झील के किनारे या जङ्गल में पेड़ों के झुरमुट में बैठकर आंखें मूंदकर अपने चारों ओर बिखरी हुई आवाजों को सुनने की कोशिश कीजिये। शुरू-शुरू में सब कुछ एक मिला जुला शोर सा आपको सुनाई देगा, किन्तु धीरे-धीरे आप प्रत्येक ध्वनि को अलग-अलग साफ़-साफ़ सुनने लगेंगे। तब आपको ज्ञात होगा कि जिसे आप एक मिला जुला शोर समझ रहे थे वह अनेक सूक्ष्म ध्वनियों के ताने बाने से निर्मित है।

३—किसी ऐसे स्थान में पहुँच जाइये जिसे साधारण भाषा मे नीरव या निर्जन कहते हैं। ऐसे स्थान में अपने समस्त ध्यान को सुनने पर केन्द्रित कीजिये, तो आपको अनेक मन्द-मन्द ध्वनियां सुनाई देंगी। उन सूक्ष्म ध्वनियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का अभ्यास कीजिये।

इस एकान्त अभ्यास के बाद आपके कान के पर्दे इतने संवेदनशील हो जायेंगे कि आप महफिल में बैठकर एक साथ कई विभिन्न ध्वनियों को सुन सकेंगे…उनका अन्तर समझ सकेंगे और किसी एक ध्वनि पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकेंगे। ऐसी अवस्था आजाने पर शोर गुल से व्याप्त स्थान पर भी यदि कोई वाद्य बजता हो तो आप उसे अपेक्षाकृत भली प्रकार सुन सकेंगे।

स्वर यन्त्र
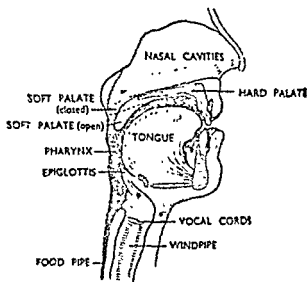
Section of Mouth, Throat, etc.

स्वर साधना के पूर्व हमारे लिये यह जानना जरूरी है कि हमारे शरीर के वे कौनसे अवयव हैं, जो स्वर को जन्म देते हैं तथा उन विभिन्न अवयवों पर किस प्रकार काबू पाया जा सकता है ?

स्वर यन्त्र (Larynx)—यह स्वरेन्द्रिय और टेंटुआ (Trachea) का ऊपरी हिस्सा है। नौ कारटिलेजों से बने हुए एक कोष्ठ को स्वर यन्त्र कहते हैं, जिनमें प्रमुख चार के नाम इस प्रकार हैं—चुल्ली कारटिलेज (Thyroid), मुद्रा कारटिलेज

(Cricoid) तथा दो त्रिकोण कारटिलेज (Arytenoids)। इस कोष्ठ के नीचे वाले भाग से टेंटुआ प्रारम्भ होता है। इन चार कारटिलेजों के अलावा एक कारटिलेज पीपल के पत्ते के समान होता है। उसी को स्वरयन्त्रच्छद (Epiglottis) कहते हैं, यह ढक्कन का कार्य करता है और खुराक को स्वर यन्त्र में नहीं गिरने देता। स्वर यन्त्र के कारटिलेज परस्पर पेशियों और बन्धनों से ग्रन्थित रहते हैं। अब उन चार प्रमुख कारटिलेजों के बारे में कुछ बताते हैं:—

चुल्लीकारटिलेज—स्वर यन्त्र के सम्मुख तथा दोनों ओर यह कारटिलेज होता है। ठीक सामने एक उभरा हुआ भाग रहता है जिसे 'आदम का सेब' (Adam's apple) कहते हैं। यह पीछे जुड़ा होता है, एक पतली झिल्ली इसके पिछले भाग में लगी रहती है। यह नीचे की ओर मुद्रा कारटिलेज तथा ऊपर की ओर हाइआयड (hyoid) नाम की हड्डी से मिला होता है।

मुद्रा कारटिलेज—यह चुल्ली कारटिलेज के नीचे होता है। हवा की नली में सिर्फ यही कारटिलेज पूर्ण है। इसकी शक्ल अँगूठी के समान है, इसीलिये इसको मुद्रा कारटिलेज बोलते हैं। इसके सामने का भाग तंग (संकरा) और पीछे का भाग चौड़ा होता है। चुल्ली तथा इसके मध्य का स्थान झिल्ली से मिला हुआ होता है। ऊपर दोनों तरफ दो त्रिकोण कारटिलेज हुआ करते हैं।

त्रिकोण कारटिलेज—यह दो छोटे कारटिलेज होते हैं, इनकी शक्ल पिरामिड्स के समान त्रिकोण होती है। यह मुद्रा कारटिलेज

के ऊपर पीछे की ओर इस तरह लगे रहते हैं कि आसानी से जुम्बिश (हिल-जुल) कर सकें। इस त्रिकोण कारटिलेज तथा चुल्ली की पिछली सतह के बीच में दो सौत्रिक बंधन रहते हैं, जो पतली भिल्ली से ढके होते हैं। इनके स्वर-तार या स्वर-रज्जु (Vocal Cords) कहलाते हैं। ये बंधन इस प्रकार मिले होते हैं कि जब ये फैलते हैं, तो इनके किनारों के पास-पास और समानान्तर आ जाने से केवल बहुत ही पतला सा छिद्र रह जाता है, जिससे होकर हवा जाती है। स्वर-तार के ऊपर दो और अगल-बगल में तन्तु की ओर दो तहें हैं। इनका स्वर उत्पन्न करने में कोई हाथ नहीं होता।

यह समझना चाहिये कि स्वर तारों के एक दूसरे के पास-पास आने या एक दूसरे से दूर रहने में मांस पेशियां ही सहायक होती हैं। उन्हीं के संकोच तथा प्रसार से ऐसा हो सकता है। मनुष्य जब चुपचाप सांस लेता है, तब स्वर तारों के बीच साधारण अन्तर रहता है, किन्तु गहरी सांस लेते वक्त इस अन्तर में वृद्धि हो जाती है। यह अन्तर बोलते वक्त कम हो जाता है तथा गाने और चिल्लाने के समय तो बहुत ही कम हो जाता है।

स्वरयन्त्रच्छद—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एक पत्ती की शक्ल का कारटिलेज का टुकड़ा है, जिसका नीचे का पतला भाग चुल्ली से मिला होता है। खान-पान के समय यह स्वर यन्त्र को बन्द रखता है। वैसे साधारणतया सांस लेते समय सीधा रहता है।

हाइआयड—यह एक हड्डी होती है, जिसकी आकृति अंग्रेजी अक्षर यू (U) के समान होती है तथा चुल्ली कारटिलेज के ऊपर जीभ की जड़ में होती है। यह किसी अन्य हड्डी से मिली हुई नहीं होती, अपितु खोपड़ी में लगे बन्धनों से लटकी रहती है। जीभ तथा स्वर-यन्त्र की कई मांस पेशियों से इसका सम्बन्ध रहता है।

स्वर—स्वर तारों के कम्पन से उत्पन्न होता है। मामूली सांस लेते समय स्वर तार ढीले रहते हैं। किन्तु बोलते अथवा गाते समय स्वर-तार तन जाते हैं, उस समय जो हवा बाहर निकलती है वह स्वर-तार में कम्पन पैदा करती है, उसी का नाम स्वर है।

स्वर का मन्द्र अथवा तीव्र होना कम्पन गति पर निर्भर होता है तथा कम्पन स्वर-तार पर। जितना छोटा और तना हुआ स्वर-तार होगा उतना ही कम्पन ज्यादा होगा तथा स्वर भी तीव्र होगा।

स्वर का मीठा अथवा कड़वा होना भी कई बातों, जैसे—मुख, नाक और हलक़ की आकृति तथा बनावट और जीभ का स्थान आदि पर निर्भर होता है। ये अङ्ग अलग-अलग व्यक्तियों के अलग-अलग होते हैं, इसी कारण एक व्यक्ति का स्वर दूसरे व्यक्ति के स्वर से भिन्न होता है। लड़के तथा लड़कियों का स्वरयंत्र एक सा ही होता है, किन्तु आयु वृद्धि के साथ-साथ लड़कों का स्वर यन्त्र बढ़ता जाता है और कम्पन में विभिन्नता आने से स्वर में भी अन्तर पड़ जाता है।

स्वर यन्त्र एक सुषिर वाद्य है। ध्वनि के जो नियम एक वाद्य पर लागू होते हैं, वे ही नियम स्वर यन्त्र पर भी लागू होते हैं। जिस प्रकार एक वाद्य शक्ति (Energy) को ध्वनि में परिवर्तित कर देता है, उसी प्रकार स्वर यन्त्र भी श्वास के रूप में पेशियों और फेफड़ों द्वारा प्राप्त शक्ति को ध्वनि में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार श्वास द्वारा भीतर ली गई वायु का हम दोहरा प्रयोग करते हैं। श्वास द्वारा फेफड़ों में भरी गई हवा फेफड़ों को ऑक्सीजन देकर रक्त को शुद्ध करती है तथा शरीर से बाहर निकलते हुए स्वर को जन्म देती है। पहली क्रिया स्वतः ही हमारे अचेतन में होती रहती है, दूसरी क्रिया के लिये विशेष संयम और कुशलता की जरूरत पड़ती है।

डाक्टर लोग अभी आवाज में गूंज पैदा करने वाले अवयव के विषय में एकमत नहीं हैं। कुछ डाक्टरों का कथन है कि ये स्वर यंत्र (Larynx) में स्थित दो मुलायम हड्डियां (कारटिलेज) हैं, जिन्हें पास-पास करके उनके बीच से सांस फूँकने पर उनमें कम्पन पैदा होता है। यदि ये जोर से भींच लिये जाते हैं तो एक लघु स्वर (Small note) को जन्म देते हैं और यदि जोर से न भिंचे हों तो बड़े स्वर (great note) को जन्म देते हैं। दूसरे डाक्टरों का मत है कि उन मुलायम हड्डियों में कम्पन नहीं होता बल्कि ये हवा के प्रवाह को इस प्रकार संचालित करते हैं कि वह भंवर की शक्ल अख्तियार कर लेती है।

दोनों हालतों में नतीजा एक ही निकलता है। स्वर एक सुषिर वाद्य है जिसमें कम्पन या तो उन दो मुलायम हड्डियों द्वारा होता है जिन्हें अंग्रेजी में Vocal cords (स्वरतार या स्वर रज्जु) कहते हैं या इन हड्डियों द्वारा उत्पन्न वायु के भंवरों द्वारा होता है।

मुख पेशियों की कार्य-प्रणाली
और उनके व्यायाम

जिस प्रकार एक रेकर्ड को ठीक-ठीक सुनने के लिये एक ग्रामोफोन के प्रत्येक पुर्जे का ठीक-ठीक होना, तथा घड़ी ठीक समय बताती रहे उसके लिये प्रत्येक स्प्रिंग का ठीक होना आवश्यक है उसी प्रकार आवाज सुरीली और व्यवस्थित निकलने के लिये उससे सम्बन्धित प्रत्येक अंग की कार्य प्रणाली सुन्दर होनी चाहिये। ग्रामोफोन में सारे पुर्जे ठीक काम कर रहे हैं किन्तु एक छोटी सी सुई खराब या घिसी हुई है तो रेकर्ड की आवाज ठीक सुनाई नहीं पड़ेगी; उसी प्रकार स्वर के लिये आपके सारे अङ्ग ठीक हैं लेकिन नासिका, कपोल, कण्ठ, होट, जीभ आदि व्यवस्थित रूप से कार्य नहीं कर रहे हैं अथवा उनकी ओर आपने कोई ध्यान नहीं दिया है तो आपके स्वर में माधुर्य नहीं आ सकता।

कपोल और होट—

जीभ का ठीक-ठीक रखना अधिकतर कपोलों (गालों) और होटों की पेशियों की कार्य प्रणाली पर निर्भर है। प्रत्येक का अभ्यास अलग-अलग होना चाहिये और धीरे-धीरे, बाद में वे सब एक साथ मिलकर ही ठीक कार्य कर सकेंगे।

कपोलों को ढीला कर, होठों से मुस्कराते हुए और दांतों को थोड़ा खोलते हुए 'आ' का आलाप कीजिये। आलाप के मध्य में हाथों को चित्र में दिखाई गई स्थिति के अनुसार मुँह पर रख लीजिये, किन्तु मुँह की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आना चाहिये यह स्थिति स्वर को दूर ले जाने वाले यंत्र का कार्य करेगी। स्वर बिना ध्वनि को बढ़ाये हुए स्वतः ही जोर से प्रतिध्वनित होगा। इसके बाद हाथों को हटाकर उसी स्थिति में आलाप करते रहिये। बार-बार ऐसा करने से आपकी साधारण आवाज में एक परिवर्तन हो जायेगा।

उपरोक्त स्थिति के बाद होठों को आगे बढ़ाकर 'ओ' का आलाप करिये। आलाप साधारण रूप से निकली हुई ध्वनि पर कर सकते हैं। नीचे का जबड़ा नीचे की ओर नहीं झुकना चाहिये, इसके लिये ठोडी पर उंगली रखली जाय तो अच्छा रहेगा। दिन में किसी भी समय यह व्यायाम किये जा सकते हैं।

अधर (होट) व्यायाम—

दांतों को जोर से भींचिये और पूरे व्यायाम भर इन्हें भींचे रखिये। स्थिति में स्वाभाविकता होनी चाहिये। ऐसा न हो कि

आप आगे के केवल दो दांतों को नीचे के दांतों पर टिकालें और नीचे का जबड़ा आगे निकल जाय जैसा कि अक्सर मंजन करते समय हुआ करता है।

१—जिस प्रकार सीटी बजाते हैं उसी प्रकार होटों को बनाइये। सामने के ऊपर के दांतों को थोड़ा सा निकालिये, थोड़ी देर के लिये चित्र के अनुसार यही स्थिति रखिये।

२—जितना सम्भव हो सके होटों को तेजी से पीछे हटाइये जिससे कि संपूर्ण दांत दिखलाई पड़ने लगें जैसा कि हँसते समय होता है। कुछ देर तक ऐसी ही स्थिति रखिये। एक अभ्यास चार-चार के समूह में तीन बार करते हुए कुल बारह बार करना है।

३—दांतों और होटों को अच्छी तरह बन्द कीजिये। जितनी जल्दी हो सके होटों को आगे कीजिये, कुछ देर इसी तरह रहिये।

४—जल्दी ही होटों को जितना पीछे कर सकते हों करिये और थोड़ी देर तक उन्हें ऐसा ही रखिये।

जबड़े और होटों का सम्मिलित व्यायाम—

इसको शुरू करने से पहले इसके उद्देश्यों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और कहाँ-कहाँ ग़लती होने की सम्भावना है

यह भी समझ लेना चाहिये क्योंकि यह व्यायाम कुछ कठिन है। मांसपेशियों का अभ्यास करने वाले अच्छी तरह जानते होंगे कि दो स्वतंत्र संचालनों को भिन्न तरीकों में करना कठिन है, यही बात इस व्यायाम करने में है।

जबड़ा पूरी तरह खुलना चाहिये जबकि ऊपर के दांतों से ऊपर का होट पूरी तरह ऊपर की ओर उठा रहे। दोनों गालों में कड़ापन रहना चाहिये।

१—जबड़े को जल्दी से नीचे की ओर हल्की गति से ले जाइये
२—दांतों को उनकी स्वाभाविक स्थिति में ही मजबूती से भींचिये अधरों को आगे कीजिए जैसा कि पहले एक व्यायाम में बताया जा चुका है।

३—ऊपर के होट को चित्र की भांति इस प्रकार उठाइए कि ऊपर वाले चार दांत दिखाई पड़ने लगें उपर्युक्त व्यायाम करने के पश्चात् मुँह बन्द करिए और चेहरे की मांसपेशियों को हिलाये बिना कुछ देर आराम करिये। यह व्यायाम चार-चार के समूह में दोबारा करना ही पर्याप्त है।

जीभ व्यायाम—

प्रकाश की ओर पीठ करके बैठ जाइये या खड़े हो जाइए। आराम के साथ सर को सीधा रखिए। जबड़े को अधिक से अधिक फैलाइए और होटों को अन्दर की ओर कस लीजिए! अब एक आइने द्वारा मुँह के अन्दर प्रकाश डालिए, यह आवश्यक इसलिए है कि परिणाम आंखों द्वारा प्राप्त करना है।

१—जीभ को बाहर निकालिए और उसके अगले सिरे को चित्र के अनुसार नीचे ठोड़ी से लगाइए, एक क्षण के लिए इसी स्थिति में रहिए।

२—फुर्ती से जीभ को अन्दर ले जाकर सामने के नीचे वाले दांतों की तली में टिका दीजिए।

उपरोक्त अभ्यास करते समय होट और नीचे का जबड़ा स्थिर रहेंगे। जीभ को अन्दर लेजाते समय जबड़े में किसी प्रकार की हलचल नहीं होनी चाहिये। प्रत्येक अभ्यास को तीन तीन बार एक साथ करके कुल चार बार कीजिये उसके पश्चात् मुँह बन्द करके कुछ क्षण विश्राम करिए। जिह्वा में किसी

प्रकार की तकलीफ़ अथवा थकावट नहीं रहनी चाहिए। आसानी से जितना हो सके उतना ही कीजिए।

अब आगे के अभ्यासों के लिए तैयार हो जाइए! बारी-बारी से अभ्यास क्रम चलना चाहिए न कि आप एक साथ कर डालें। शीशा लेकर नं० १ के अभ्यास की स्थिति में आजाइए।

३-पूरे अभ्यास तक जीभ के सिरे को सामने वाले नीचे के दांतों की तली से सटाइये और शेष जिह्वा को दांतों के ऊपर होकर जहां तक हो सके बाहर लाइये, कुछ देर तक इसी स्थिति में रहिये। फिर तेजी से इसे पीछे लेजाइये और स्वाभाविक स्थिति में कर लीजिये। इस अभ्यास को तीन-तीन के समूह में चार बार करते हुए कुल बारह बार करना है। प्रत्येक समूह के बाद मुँह को बन्द करके कुछ देर आराम अवश्य करना चाहिये।

४-हाथ में शीशा लेकर पूर्व स्थिति में आजाइये। मुँह को चौड़ाते हुए और नीचे वाले चमड़े को पूर्ण स्थिर रखते हुए जिह्वा को आहिस्ता-आहिस्ता इतना ऊपर उठाइये कि उसका सिरा सामने के ऊपर वाले दांतों के पिछले भाग को छूने लग जाय, फिर कुछ क्षण के लिये रुक कर धीरे-धीरे जिह्वा को नीचे के दांतों की तली तक नीचे लाइये और कुछ देर के लिये रुकिये, जब तक कि यह सीधी न हो जाय। यह अभ्यास तीन-तीन के समूह में चार बार करते हुए कुल बारह बार करना है। प्रत्येक समूह करने के बाद मुँह बन्द रखकर आराम करना चाहिये।

५-हाथ में शीशा लीजिये, मुँह को पूरा न खोलकर

साधारणतः खोलिये, नीचे का जबड़ा बिल्कुल स्थिर रहना चाहिये, यदि स्थिर रखने में कुछ कठिनाई महसूस हो तो ठोड़ी पर छोटी उङ्गली रख सकते हैं। अब जिह्वा के अगले सिरे को ऊंचा उठाइये साथ ही साथ पीछे की तरफ इतना झुकाइये कि ऊपर के दांतों के पिछले भाग से बिलकुल सट जाय। जिह्वा पीछे की ओर न जाने पावे बल्कि आगे को निकलती रहे। अब सिर को सीधा करिये और तेजी से नीचे के दांतों की तली तक ले जाइये। सिरे का ऊपरी हिस्सा तुरन्त ही नीचे के दांतों के सामने आजाना चाहिये, मानो वह इसके पीछे हो। यह अभ्यास चार-चार के समूह में तीन वार कीजिये और प्रत्येक समूह के वाद मुँह बन्द कर थोड़ी देर आराम कीजिये तथा जबड़े की स्थिरता का पूर्ण ध्यान रखिये।

इन व्यायामों से जिह्वा के सिरे में लचक आजायेगी जो कि स्वर को ठीक-ठीक निकलने में मदद देगी। साथ ही टप्पा,तराना तथा तेज सरगम बोलने में अथवा भाषण के शब्दों का सही-सही उच्चारण करने में बहुत सहायता देगी।

अधिकतर देखा गया है कि गाना गाते समय अथवा भाषण देते समय लोग मुँह को या तो आवश्यकता से अधिक खोल लेते हैं या इतना कम खोलते हैं कि उनके शब्द या स्वर मुँह के अन्दर ही घुमड़ कर रह जाते हैं ऐसी बातों को प्राकृतिक दोष कहकर उसकी ओर ध्यान नहीं देते। यदि इसकी ओर ध्यान दिया जाय तो यह दोष बिल्कुल ही निकल जांय और स्वर में वास्तविकता आजाय। कुछ लोगों की आदत हर समय थोड़ा

सा मुँह खुला रखने की होती है, यदि खोज की जाय तो इस दोष के शिकार वे ही व्यक्ति पाये जायेंगे, जिनको कुछ काल से अथवा बचपन से मुँह खोलकर सोने की आदत पड़ गई है। मुँह खोलकर सोने से हर समय मुँह खुला रखने का दोष तो उत्पन्न होता ही है साथ ही वे अपने स्वर को भी नष्ट करने का उपक्रम करते हैं।

जिस प्रकार तबले या अन्य वाद्यों को मौसम के प्रभाव से बचाने के लिये कपड़े से ढककर रखते हैं उसी प्रकार आवाज की रक्षा के लिये मुँह को अधिक से अधिक मात्रा में बन्द रखना चाहिये। सोते समय मुँह खुला रह जाने से बाहर की हवा स्वर-यन्त्र पर जाकर अपना असर दिखाती है और धीरे-धीरे उसकी मधुरता को नष्ट करने में सहायक होती है। लोग इस आदत को छुड़ाने के लिये अनेक प्रयोग करते हैं जिनमें से एक प्रयोग खुले मुँह में किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा बालू या मिट्टी डाल देना भी होता है। इससे कई लोगों की आदतें ठीक होती देखी गई हैं लेकिन यह बहुत भद्दा तरीका है और इससे मुँह के अन्य अवयवों को हानि पहुँचने की आशंका भी रहती है। यहां इसके लिये एक सरल सी तरकीब लिखी जा रही है जो कि निश्चय ही कुछ ही दिनों में इस आदत का खात्मा कर देगी।

सोते समय तकिया लगाने की बजाय मसनद लगाकर सोवें अथवा पतले तकिये के ऊपर एक और ऊँचा तकिया रखलें ताकि आपकी गर्दन सीधी रहने की बजाय झुक जाय ऐसा करने से

प्रथम दिन ही आप देखेंगे कि आपका मुँह अपने आप नहीं खुलता और सोते में भी सम्भवतः नहीं खुलेगा। जब सर बिल्कुल सीधा रहता है अथवा तकिया बहुत पतला होता है तो नीचे का जबड़ा सोते समय धीरे-धीरे नीचे की ओर आकर मुँह को खोल देता है। जबड़े की इसी अज्ञात क्रिया को ऊँचे तकिये पर नित्य प्रति सोकर कुछ दिनों में बन्द किया जा सकता है।

गूंज पैदा करने वाले अवयव—

हमारी आवाज में जो गूँज होती है वही उसे इतना अद्भुत बनाती है। हमारे सीने और नासिका के प्रदेश (खोखले भाग) और हमारा गला तथा हमारे होट स्वर की गूंज को निर्धारित करते हैं। गाते समय अथवा बोलते समय हम अपने मुख, गले और होटों की स्वाभाविक आकृति में परिवर्तन करते हैं और जब हम ऐसा करते हैं, हमारे मस्तक अथवा सीने के भिन्न-भिन्न प्रदेशों (खोखले भागों) में भिन्न-भिन्न प्रकार की गूँज उत्पन्न होती है। अच्छी आवाज प्रायः उस व्यक्ति की होती है जो इन गूँज उत्पन्न करने वाले हिस्सों का उत्तम प्रयोग करता है। अच्छे गायन के लिये अभ्यास द्वारा इन अवयवों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

जिन लोगों ने "मुँहचङ्ग" बजाया है अथवा बजाते हुए सुना है वे भली प्रकार इस बात को समझ सकते हैं कि किस प्रकार मुँह और होट गूंज पैदा करने में सहायक होते हैं।

प्रतिध्वनि उत्पादक नासिका यन्त्र

स्वर के लिए नासकीय प्रतिध्वनित्व बहुत ही आवश्यक है क्योंकि इसके बिना स्वर में शुद्धता और गुंजन नहीं आ सकता। नासिका गुंजन क्या है इसका उत्तर वायलिन से मुक़ाबला करने पर मिल जायगा। बेला की लकड़ी ठोस न होकर पोली होती है और जैसे ही तारों पर गज (Bow) चलाया जाता है, हवा पैदा होकर पोली लकड़ी में जाकर गुंजायमान स्वर के रूप में बाहर निकलती है; ठीक यही दशा नासिका गुंजन की है। जैसे ही मुँह से आवाज निकलती है वैसे ही नासिका में गुंजन पैदा होता है। नासिका गुंजन और नासिका स्वर दोनों अलग-अलग चीजें हैं। नासिका स्वर में आवाज नाक के दोनों सूराखों से निकलती है और नासिका गुंजन में मुँह से जो कि केवल नासिका छिद्रों में कम्पन्न ही पैदा करती है।

नासिका गुंजन को विकसित करने के पूर्व जिह्वा को लचीला बना लेना आवश्यक है क्योंकि बिना इसके स्वर नीचे ही रह जायगा और नासिका छिद्रों तक प्रतिध्वनि पैदा करने के लिये नहीं पहुँच सकेगा। अगर प्राकृतिक रूप से नासिका गुंजन की योग्यता नहीं है तो नियमित रूप से गुनगुनाने का अभ्यास करने से प्राप्त की जा सकती है।

एक नथुने (नाक का सूराख) को बन्द कीजिये और दूसरे नथुने से कोमलता के साथ गुनगुनाइये। गुनगुनाना प्रारम्भ करने के बाद कोमलता से और जल्दी-जल्दी दूसरे नथुने को एक

उंगली से थपथपाइये। प्रत्येक नथुने से कई बार ऐसा कीजिये। थपथपाना बन्द करने के बाद गुनगुनाहट की आवाज को सुनिये, आप देखेंगे कि थपथपाना प्रारम्भ करने से पूर्व जो आवाज थी उससे यह आवाज अधिक साफ होगी। इस क्रिया से श्लेष्म की झिल्ली पर भी आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ेगा, नासकीय जगह भर जायेगी और नासकीय गुंजन का विकास होगा।

नथुनों का विकास—

नथुनों के विकास का ठीक-ठीक अभ्यास करना चाहिये यह कोमलता पर अधिकार करने में बहुत ही सहायक होते हैं। इसके अलावा वार सप्तक के स्वरों का उच्चारण करने में अधिक सहायता देते हैं। इन अभ्यासों को श्वास अभ्यासों से अलग ही करना चाहिये।

एक शीशा लीजिये और नथुनों को देखिये। श्वास लिए बिना ही उन्हें फुलाइये। ऐसा चार बार करके कुछ देर के लिये शांत रहिये और चार-चार के समूह में दो बार फिर ऐसा करिये। दिन में थोड़ी-थोड़ी देर बाद कई बार इस अभ्यास क्रम को चलाते रहिये। यह ध्यान रहे कि नथुने न तो थकें ही और न कांपने लग जांय। यह भी ध्यान रक्खें कि ऐसे अभ्यास आपकी आदत में न आ जांय।

———

श्वास नियन्त्रण
और
शारीरिक सन्तुलन

यह हम पहले बता चुके हैं कि स्वर यन्त्र एक सुषिर वाद्य है। उसका ठीक-ठीक प्रयोग कर सकने के लिए यह जरूरी है कि हम इस पर विचार करें कि सांस किस तरह लेनी चाहिये, क्योंकि श्वास हमारे स्वर को उत्पन्न करने का प्रमुख साधन है। यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि जब तक इस यन्त्र को उचित परिमाण में श्वास प्राप्त नहीं होगी यह ठीक प्रकार की ध्वनि अथवा स्वर को जन्म नहीं दे सकेगा। साथ ही यह भी जरूरी है कि श्वास की यह आवश्यक मात्रा समान गति से प्रवाहित हो, अन्यथा जो आवाज उत्पन्न होगी उसमें अनावश्यक उतार-चढ़ाव होगा और वह विकृत कहलायेगी। अच्छी आवाज वह कहलाती है, जिसमें गायक की इच्छानुसार ही उतार-चढ़ाव हो और श्वास का नियमित प्रवाह हो।

साधारण श्वास प्रश्वास की क्रिया में हम नाक द्वारा फेफड़ों में वायु को खींचते हैं और उसी मार्ग से उसे बाहर छोड़ते भी हैं। श्वास लेते समय तालु का पिछला भाग (Soft palate) भोजन की नली को ढक देता है और इस प्रकार नाक से गले तक का मार्ग साफ हो जाता है। शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये काफी हवा एक बार में श्वास द्वारा से ही

जाती है। साधारण श्वास क्रिया में जितना समय सांस को लेने में लगता है उतना ही उसे छोड़ने में भी लगता है। साधारण अवस्था में श्वास और प्रश्वास में यह संतुलन बना रहता है। हर प्रश्वास में फेफड़े पूरी तरह खाली नहीं हो जाते बल्कि उनमें कुछ हवा हर समय शेष रहती है।

श्वास क्रिया स्वतः हमारे अचेतन में होती रहती है, किन्तु अभ्यास द्वारा उस पर काबू पाया जा सकता है, उसकी गति में परिवर्तन किया जा सकता है, तथा श्वास की मात्रा को घटा बढ़ा सकते हैं और श्वास को कुछ देर के लिये रोक सकते हैं। साधारण तौर पर हम सचेत रूप से इस शक्ति का प्रयोग नहीं करते, क्योंकि स्वचालित यन्त्र की भांति हमारे शरीर की आवश्यकतानुसार पसलियों की पेशियों तथा वक्ष-उदर मध्य पेशी (Diaphragm) द्वारा यह क्रिया स्वयं होती रहती है।

फेफड़ों का आकार कुछ-कुछ नासपाती की तरह ऊपर की ओर पतला और तले की तरफ़ चौड़ा होता है। ये रबर के गुब्बारे की तरह घट बढ़ सकते हैं। फेफड़ों का निचला भाग सीने के नीचे के हिस्से तक पहुँचता है।

वक्ष-उदर मध्य पेशी (Diaphragm) पसलियों और पेट (Abdomen) से लगी हुई एक मजबूत पेशी है। यह वक्षस्थल (Thorax) को पेट से अलग करती है। साधारण अवस्था में यह बाहर की ओर गोलाकार होती है, किन्तु पसलियों के फैलने पर यह सपाट हो जाती है। इस प्रकार सीने का अन्तर-प्रदेश सांस लेने पर तीनों दिशाओं में फैलता है; इधर से उधर, ऊपर से नीचे और आगे से पीछे। जब शरीर की विशेष प्रक्रिया

प्रकार का झटका न लगे। हाथों को कन्धों की सीध में रखना भी अत्यन्त जरूरी है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

अब नीचे वाले जबड़े को फैलाते हुए मुँह खोलिए फिर हाथों को आहिस्ता से नीचे करते हुए बगल में ले जाइये और धीरे से श्वासोच्छ्वास कीजिये। परन्तु हथेली ऊपर की ओर रहें। अब थोड़ा आराम लेकर पाँच बार इसी व्यायाम को फिर करिये। प्रत्येक बार आराम का ध्यान रखिये।

लम्बी-लम्बी ध्वनियों को धारा प्रवाहिक एवं सुगमता से बोलने की अपूर्व क्षमता उक्त क्रिया द्वारा सम्भव हो जायेगी।

श्वास लेना और बोलना दो भिन्न-भिन्न शारीरिक प्रक्रियायें हैं। गले से आवाज पैदा करने और उसे भाषा का रूप देने के लिए काफी मात्रा में अतिरिक्त श्वास की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अतिरिक्त शक्ति खर्च होती है। केवल अभ्यास द्वारा ही फेफड़ों और पेशियों को मजबूत बनाया जा सकता है। अच्छे वक्ता प्रायः बिना रुके घण्टों भाषण करते रह सकते हैं। साधारणतः एक आदमी अधिक से अधिक नौ दिन तक लगातार बोल सकता है। यह रेकार्ड अभी हाल में इंग्लैंड में हुई बोलने की एक प्रतियोगिता में श्री क्लीफ शेयन ने स्थापित किया। अच्छे गायक बिना रुके हुए कई-कई घण्टों तक गा सकते हैं और एक श्वास में अपेक्षाकृत ज्यादा देर तक गाते हैं। तानसेन के ज्येष्ठ पुत्र विलास खाँ एक दिन प्रदर्शन करने बैठे और इतने डूब गए कि प्रातः नौ बजे से सायं पाँच बजे तक गाते रहे। कारण, उनमें अधिक देर तक स्वर लगाते रहने की अपूर्व क्षमता थी और उस दिन तोड़ी थाट के एक नव राग 'विलासखानी तोड़ी' को इन्होंने जन्म दिया था। आजकल भी ऐसे कितने ही गायक हैं जो घन्टों तक गा सकते हैं।

शारीरिक संतुलन—

अधिकांश देखा जाता है कि विदेशी ऑपेरा, नाट्यशालाओं आदि में सङ्गीतकारों को अधिकतर खड़े होकर ही गाना पड़ता है। यदि उनके खड़े होने की मुद्रा ग़लत है तो ठीक-ठीक श्वास नहीं ली जा सकती और उसकी प्रतिध्वनि खराब हो जायेगी।

एक अनुभवी सङ्गीतकार का कहना है कि दाहिनी टांग ही स्वर का ध्वनि-बोर्ड है। यद्यपि यह कथन हास्यास्पद है परन्तु फिर भी कुछ अन्शों तक इसमें सचाई है।

अगर वजन सीधे पैर पर है और घुटना सीधा है जैसा कि इस स्थिति में होना चाहिये तो वक्ष-उदरमध्य पेशी (Diaphragm) का श्वास आसान होगा और प्रतिध्वनि की क्रिया ठीक होगी। चित्र के अनुसार इसका परीक्षण कर देखिये।

एक बड़े आइने के सामने खड़े हो जाइये। दाहिने पैर को आगे बढ़ाइये। दाहिने पैर की ऐड़ी पर वजन डालिये। फिर देखिये कि सीधे घुटने को कड़ा रखना, सिर को सीधा रखना, कंधों को पीछे की ओर झुकते हुए रखना और ऊपरी सीने को ऊँचा रखना कितना आसान है। अब गहरी श्वास लीजिए और लंबा स्वर निकालिए।

वजन को पिछले पैर पर डालिये और देखिये क्या होता है ? पेड़ू फूल जायेगा, ऊपरी सीना बैठ जायेगा और ठोढ़ी आगे निकल आयेगी। जब ऐसी स्थिति बन जायेगी तो ध्वनि कमजोर पड़ जायेगी और गूँज समाप्त हो जायेगी। अतः दाहिने पैर को आगे रखना ही श्रेयस्कर है और खड़े होकर गायन की अवस्था में चित्र की भांति ही मुद्रा रखनी चाहिए।

सङ्गीतज्ञ के लिये खड़े होने अथवा बैठने की अवस्था में छाती तथा सिर को सीधा रखने की बहुत आवश्यकता है। अगर यह झुक जायेगा तो कंठ नली की स्वतन्त्र गति अवरुद्ध हो जायेगी जोकि स्वर को सीमित कर देगी। इसी प्रकार ठोढ़ी को भी आगे नहीं निकालना चाहिये क्योंकि इससे गर्दन फैल जाती है। लेकिन देखा गया है कि हमारे गायक ऐसी मुद्राओं पर कोई ध्यान न देते हुए शारीरिक संतुलन को बिगाड़ लेते हैं और अपने सीमित स्वर की आन्तरिक क्रिया का उनको आभास भी नहीं हो पाता। अतः चित्र के अनुसार दर्पण के समक्ष अभ्यास करना अति उत्तम रहता है।

प्राणायाम और उसका प्रभाव—

प्रायः आवश्यक श्वास शक्ति (Breathforce) के अभाव में अच्छा गला होते हुए भी कई लोग अच्छे गायक नहीं हो पाते। इस कमी को दूर करने के लिए हमें सचेत रूप से श्वास यंत्र का प्रयोग करना सीखना चाहिए। अपने श्वास यंत्र की भलीभांति परीक्षा करने पर हमें यह ज्ञात हो जायेगा कि उसमें क्या-क्या दुर्बलतायें हैं तथा उसमें क्या परिवर्तन किये जा सकते हैं ? जो लोग अपने स्वर को विकसित करना चाहते हैं उन्हें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि श्वास और स्वर में गहरा सम्बन्ध है।

पाश्चात्य सङ्गीतज्ञ फ्रान्सीको लेम्पर्टी का कहना था कि गायक उस तैराक की तरह श्वास लेता है, जो एक क्षण को भी तैरते समय अपने कन्धे स्थिर नहीं रखता। अच्छे स्वर के श्वास से ऐसा मालूम पड़ना चाहिए कि मानों वह स्वयं ही निकल रहा हो, जबकि दूसरी ओर दोषयुक्त स्वर का श्वास हटता हुआ सा मालूम पड़ता है मानो उस पर पूर्ण अधिकार नहीं है।

इटली के प्रमुख गायक पच्चिआरोती का मत है कि जो अच्छी प्रकार श्वास लेना और ठीक प्रकार उच्चारण करना जानता है वह गाना भी अच्छी व भली प्रकार जानता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हो सकता है कि जो खुले गले से गाते समय श्वास साधता रहे और जिह्वा को कड़ी न होने दे, सच्चा गायक है।

उसी समय के दूसरे प्रमुख गायक क्रीसेन्टीनी का भी मत है कि हमको मुक्त कण्ठ व जीभ से गाना चाहिए ताकि श्वास पर

वज़न को पिछले पैर पर डालिये और देखिये क्या होता है? पेड़ू फूल जायेगा, ऊपरी सीना बैठ जायेगा और ठोड़ी आगे निकल आयेगी। जब ऐसी स्थिति बन जायेगी तो ध्वनि कमज़ोर पड़ जायेगी और गूँज समाप्त हो जायेगी। अतः दाहिने पैर को आगे रखना ही श्रेयस्कर है और खड़े होकर गायन की अवस्था में चित्र की भांति ही मुद्रा रखनी चाहिए।

सङ्गीतज्ञ के लिये खड़े होने अथवा बैठने की अवस्था में छाती तथा सिर को सीधा रखने की बहुत आवश्यकता है। अगर यह झुक जायेगा तो कंठ नली की स्वतन्त्र गति अवरुद्ध हो जायेगी जोकि स्वर को सीमित कर देगी। इसी प्रकार ठोड़ी को भी आगे नहीं निकालना चाहिये क्योंकि उससे गर्दन फैल जाती है। लेकिन देखा गया है कि हमारे गायक ऐसी मुद्राओं पर कोई ध्यान न देते हुए शारीरिक संतुलन को बिगाड़ लेते हैं और अपने सीमित स्वर की आन्तरिक क्रिया का उनको आभास भी नहीं हो पाता। अतः चित्र के अनुसार दर्पण के समक्ष अभ्यास करना अति उत्तम रहता है।

प्राणायाम और उसका प्रभाव—

प्रायः आवश्यक श्वास शक्ति (Breathforce) के अभाव में अच्छा गला होते हुए भी कई लोग अच्छे गायक नहीं हो पाते। इस कमी को दूर करने के लिए हमें सचेत रूप से श्वास यंत्र का प्रयोग करना सीखना चाहिए। अपने श्वास यंत्र की भलीभांति परीक्षा करने पर हमें यह ज्ञात हो जायेगा कि उसमें क्या-क्या दुर्बलतायें हैं तथा उसमें क्या परिवर्तन किये जा सकते हैं ? जो लोग अपने स्वर को विकसित करना चाहते हैं उन्हें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि श्वास और स्वर में गहरा सम्बन्ध है।

पाश्चात्य सङ्गीतज्ञ फ्रान्सीको लेम्पर्टी का कहना था कि गायक उस तैराक की तरह श्वास लेता है, जो एक क्षण को भी तैरते समय अपने कन्धे स्थिर नहीं रखता। अच्छे स्वर के श्वास से ऐसा मालूम पड़ना चाहिए कि मानों वह स्वयं ही निकल रहा हो, जबकि दूसरी ओर दोषयुक्त स्वर का श्वास हटता हुआ सा मालूम पड़ता है मानो उस पर पूर्ण अधिकार नहीं है।

इटली के प्रमुख गायक पच्चिआरोती का मत है कि जो अच्छी प्रकार श्वास लेना और ठीक प्रकार उच्चारण करना जानता है वह गाना भी अच्छी व भली प्रकार जानता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हो सकता है कि जो खुले गले से गाते समय श्वास साधता रहे और जिह्वा को कड़ी न होने दे, सच्चा गायक है।

उसी समय के दूसरे प्रमुख गायक क्रीसेन्टीनी का भी मत है कि हमको मुक्त कण्ठ व जीभ से गाना चाहिए ताकि श्वास पर

अधिकार बना रहे; मेरा तो कहना है कि गाते समय जीभ और कण्ठ ठीक उस स्थिति में हों जैसे किसी से फुसफुसाते हुए बातें करते हैं और जैसे जंभाई लेने से पहले उसी समय श्वास के दबाव से गर्मी का आभास होता है।

श्वास शक्ति को बढ़ाने के लिए यहां कुछ सुझाव दिये गये हैं। ये अभ्यास पाश्चात्य तथा भारतीय पद्धति दोनों पर आधारित हैं।

(१) धीरे-धीरे गहरी सांस लेकर फेफड़ों को पूरी तरह भर लो। सीने की हड्डी (Breast Bone) के नीचे पसलियों पर अंगुली रखने से आपको मालूम होगा कि फेफड़ों में हवा भरने के साथ-साथ सीना फूलता है और पसलियों तथा वक्ष उदर मध्य-पेशी (Diaphragm) की स्थिति में अन्तर आ जाता है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सांस लेते समय सीने के ऊपरी हिस्से तथा कन्धे तन न जाँय अर्थात् कन्धों की स्थिति में अन्तर न आना चाहिए। यदि बार-बार ऐसा होता है तो इसके माने यह है कि निचली पसलियाँ ठीक से नहीं फैल रही हैं। जहाँ तक स्वर या आवाज का सम्बन्ध है ऊपर के सीने में भरी जाने वाली सांस कोई लाभ नहीं पहुँचाती।

अब धीरे-धीरे सांस को छोड़िये और फेफड़ों के खाली होने के साथ-साथ सीने का गिरना अनुभव कीजिये।

श्वास लेना एक सरल और स्वाभाविक क्रिया है और प्राणायाम इसी का परिमार्जित रूप। प्राणायाम करते समय मांस पेशियों को सख्त करने या तानने की कोई आवश्यकता नहीं है

यदि प्राणायाम करते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मांस पेशियों में खिंचाव पैदा होरहा है तो इसके माने हैं कि मस्तिष्क में कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है और उसी के फलस्वरूप स्नायुत्वखिंचाव (Nervous Tension) होरहा है।

ऐसा आभास होने पर थोड़ा विश्राम कर लीजिए और फिर थोड़ी देर बाद शुरू कीजिए। भीतर जाती हुई श्वास और फेफड़ों के निचले चौड़े भाग पर अपना ध्यान केन्द्रित कीजिए।

(२) यदि अब भी कठिनाई जान पड़ती है तो प्रसन्नता से निश्वास छोड़िये। ऐसा करने से तनाव प्रायः दूर हो जाता है।

(३) एक ही समय में बहुत देर तक यह अभ्यास न कीजिये। यदि चक्कर सा आने लगता है तो यह समझिये कि फेफड़ों में अतिरिक्त श्वास के आ जाने से उसका रसायनिक संतुलन बिगड़ गया है क्योंकि अतिरिक्त श्वास का पूरा-पूरा प्रयोग शारीरिक प्रक्रिया में नहीं हो पाया है। ज्यों-ज्यों आपका अभ्यास और श्वास पर काबू बढ़ता जायेगा यह दुर्बलता भी दूर होती जायेगी।

(४) तेजी से सांस लेने और उसे धीरे-धीरे छोड़ने का अभ्यास कीजिए। बोलने और गाने में साधारण अवस्था में श्वास लेने की अपेक्षा शीघ्र श्वास ली जाती है। फलस्वरूप हम मुँह और नाक से श्वास लेते हैं।

शुरू-शुरू में अभ्यास करने के लिए आइने के सामने खड़ा होना लाभदायक है ताकि जिस समय जल्दी-जल्दी सांस ली जा रही हो तो उस समय कन्धों की गति पर नजर रखी जा सके। १ पर श्वास लीजिए और २, ३, ४, ५ पर छोड़ दीजिए। बार-बार इसे

दुहराइए। यह गिनती जहां तक सम्भव हो बढ़ाई जा सकती है किन्तु १ पर सांस लेने के लिए हमेशा तैयार रहिये।

इस अभ्यास से पसलियों की पेशियों में लोच पैदा होता है तथा सांस की मात्रा पर सचेत अधिकार प्राप्त होता है। ध्यान रहे यह अन्तिम अभ्यास केवल वक्ताओं और अभिनेताओं के लिए है, गायकों के लिए नहीं।

भावी गायकों के लिए यहां विशेष रूप से दो और प्राणायाम के अभ्यास दिए जारहे हैं।

प्राणायाम नं० १–मुख को कुछ झुकाकर कंठ से हृदय तक शब्द करते हुए वायु को फेफड़ों में भरना चाहिये। इस प्रकार दोनों नथुनों से थोड़ी–थोड़ी वायु खींचनी चाहिये। फिर पूरी हवा भर जाने के बाद चार पांच सैकिन्ड तक उसे रोके रखना चाहिये। फिर इडा नाड़ी (बाईं ओर की नाड़ी) से शनैः–शनैः वायु बाहर निकालनी चाहिये। इस प्राणायाम में, हवा खींचना उसे रोकना और निकालना तीनों कार्य स्वल्प परिमाण में ही करने चाहिये। इस प्राणायाम का अभ्यास सोते, बैठते, चलते, अथवा खड़े हुए किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। इस प्राणायाम का नाम 'उज्जायी' है। नित्य प्रति एक घन्टे तक इसको करते रहने से कफ प्रकोप, उदर रोग, जलोदर, सूजन, मदाग्नि, अजीर्ण और मेदा विकार तथा मल से उत्पन्न समस्त रोगों का विनाश होता है और अग्नि भी प्रदीप्त होती है। साथ ही इससे कण्ठ की नसें भी स्वस्थ एवं सबल होती हैं।
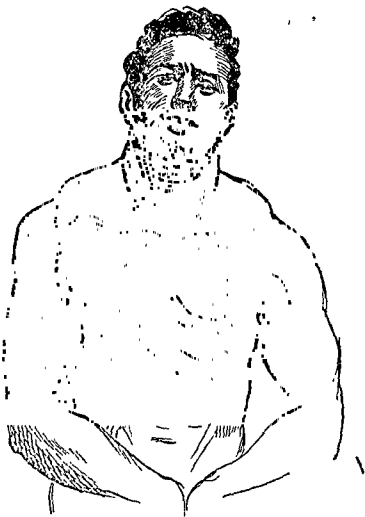
प्राणायाम नं० २–जिह्वा को होट से एक अंगुल बाहर निकाल कर पक्षी की चोंच के समान आकृति बनाकर बाहर से वायु खींचे फिर कुछ देर रोककर नाक की दोनों नलियों से धीरे-धीरे बाहर निकाले। सुबह शाम आधे घन्टे तक इस प्राणायाम का

अभ्यास करना चाहिए। यह ध्यान रहे कि शीतकाल में कफ प्रकृति के मनुष्यों के लिये वर्जित है। पित्त और वायु के कारण दूषित हुआ कंठ इस प्राणायाम के नियमित प्रयोग से शनैः-शनैः ठीक हो जाता है। इसको 'शीतकारी' प्राणायाम कहते हैं। इस प्राणायाम के समय सुखासन से बैठकर मेरुदण्ड, गर्दन, मस्तक सीधा और भौंहों के बीच में दृष्टि रखनी चाहिए।

उपरोक्त प्राणायामों की क्रियाएं बीच-बीच में न ठहरते हुए अर्थात् लगातार करने की आवश्यकता नहीं। यदि अभ्यास बीच में थोड़ा-थोड़ा विश्राम लेकर भी किया जायेगा तो भी लाभदायक होगा। जिन व्यक्तियों के फेफड़े अधिक कमजोर हों उन्हें प्रातः उठकर हल्की-हल्की दौड़ का अभ्यास करना चाहिए। स्त्रियों को श्वास सम्बन्धी सभी क्रियाएं मासिक धर्म तथा गर्भावस्था में सर्वथा बन्द रखनी आवश्यक हैं।

प्राणायाम द्वारा श्वास यन्त्र पर पूर्ण अधिकार हो जाने के उपरान्त स्वर साधक के लिए आगे का काम बहुत सरल हो जाता है। भाषण देते समय अथवा गाते समय यह आवश्यक है कि श्वास वाक्य के अन्त तक भङ्ग न हो, हम चाहे कविता पाठ कर रहे हों या गा रहे हों यह लम्बाई हमारे लिए नियत रहती है। यदि हम इस लम्बाई को जानते हैं तो हमें एक नियत सीमा प्राप्त हो जाती है और हम सचेत रूप से उस लम्बाई तक श्वास को ले जा सकते हैं। असली कठिनाई यह है कि अचेतन रूप से जो क्रिया हमारे शरीर द्वारा स्वतः होती रहती है उसे जागरूकता की स्थिति तक लाना है, उदाहरण के लिए साधारण अवस्था में श्वास प्रश्वास की क्रिया की ओर हमारा ध्यान नहीं

होता; वह स्वतः ही होती रहती है, किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि हम इस क्रिया को सचेत रूप से करें और इस पर अधिकार प्राप्त करें।

शुरू-शुरू में श्वास को रोकने में कठिनाई प्रतीत होती है किन्तु यह कठिनाई मुख्यतः शारीरिक न होकर मानसिक कठिनाई है और सावधानी से अभ्यास करने पर शीघ्र ही दूर की जा सकती है।

यदि श्वास की इस कठिनाई को दूर करके श्वास पर पूरी तरह काबू पा लिया जाय तो बाहर निकलने वाली श्वास को समान गति से प्रवाहित किया जा सकेगा। ऐसा होजाने पर आवाज में अनावश्यक उतार-चढ़ाव नहीं आयेगा। आवाज बीच-बीच में टूटेगी नहीं बल्कि नियमित और इच्छित रूप से प्रवाहित होती रहेगी। किन्तु यदि पसलियों की पेशियां कमजोर हैं तो श्वास के इस नियमित और इच्छित प्रभाव में बाधा पड़ेगी। यदि पसलियां झटके से गिरती हैं तो श्वास टुकड़ों में फेफड़ों से निकलेगी और श्वास की नली के सिरे पर स्थित स्वरताप (Vocal Cords) में समान रूप से कंपन नहीं होगा। फलतः आवाज टूटी फूटी होगी।

यहां भी शक्ति तथा सोद्देश्यता का भाव मुख्य है। शक्ति से हमारा तात्पर्य गठी हुई सुडौल मांसपेशियों से नहीं है बल्कि उस इच्छा शक्ति से है जो शरीर की पेशियों आदि को संचालित करती है।

प्रसिद्ध रूसी गायक एम० डी० मिखिलोव का अपने स्वर पर इतना अधिकार है कि जब वे वोल्गा के मांझियों का गीत

(अ) काफ़ी मात्रा में श्वास।
(ब) श्वास छोड़ने में शक्ति।
(स) और श्वास की ओठों की ओर गति।

इस प्रकार सारे स्वर यन्त्र का एक बारगी प्रयोग हो जाता है इसीलिए आवाज़ ठीक तौर पर निकल पाती है।

(२) जीभ के पिछले हिस्से को सपाट रखते हुए "म" की आवाज़ पर गुनगुनाइये, बन्द ओठों के भीतरी हिस्से पर मुँह में भर जाने वाली श्वास के कम्पन का आभास होना चाहिये।

स्वर को बिलकुल नीचे से प्रारम्भ कर एक समान गति से धीरे-धीरे चढ़ा कर उच्चतम शिखर पर ले जाइये (आरोह) फिर धीरे-धीरे नीचे उतार लाइये (अवरोह)। चाहें तो सरगम गुनगुना कर ऐसा कर सकते हैं। क्रमशः इस अभ्यास की अवधि बढ़ाइये और श्वास को लम्बा करने का प्रयास कीजिये।

"आ…" को नीचे से प्रारम्भ करते हुए धीरे-धीरे चढ़ाइये। आवाज़ के शिखर पर पहुँच जाने पर उसे फिर एक दम से सबसे नीचे की सतह पर ले आइये जैसे—सा …सां… सा फिर एकदम ऊपर चढ़ाइये। बार-बार इस अभ्यास को दुहराइए।

पांच दस मिनट रोज इन अभ्यासों को करने से आवाज़ को लाभ पहुंचेगा। ये अभ्यास सरल हैं और आसानी से इनका अभिप्राय समझ में आ सकता है। इनका महत्व इस दृष्टिकोण से अधिक है कि ये स्वर में लोच पैदा करने और उस पर अधिकार पाने में अत्यधिक सहायक होते हैं। वक्ता, गायक और अभिनेताओं के लिए यह आवश्यक है कि उनके कण्ठ से स्वर स्वाभाविक

रूप से निकलें। श्रोता अथवा दर्शक को कभी यह आभास नहीं होना चाहिए कि आवाज निकलने में प्रयास करना पड़ रहा है अथवा कठिनाई हो रही है।

ऊपर जो अभ्यास दिये गये हैं वे यदि होशियारी से किए जांय तो साधक को यह अनुभव लाजमी होगा कि स्वर की मात्रा (Volume) और शक्ति (Energy) स्वर के दो अभिन्न अङ्ग हैं। स्वर के उत्पादन में शक्ति एक आवश्यक वस्तु है जो कि सारी क्रिया को संचालित करती है। इस शक्ति को प्राप्त करने तथा बनाये रखने के लिए स्वास्थ्य एक आवश्यक शर्त है। अतएव स्वर साधक को चाहिए कि वह अपने स्वास्थ्य का भी पूरा-पूरा ध्यान रक्खे।

स्वर शक्ति साधन व नाद साधन

नाद साधन अत्यन्त उच्चकोटि की साधना है और यह प्रत्येक अद्वितीय सङ्गीतज्ञ के लिए आवश्यक है क्योंकि नाद की दृढ़ता के साथ-साथ दिव्य ज्ञान और आत्म शुद्धि के लिए यही एक सरल, सुगम तथा विपद्‌शून्य साधन है। यदि नित्यप्रति इसकी साधना की जाय तो इससे इतने लाभ हैं कि उनको लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस पुस्तक के लेखक ने स्वयं इसका साधन किया है। इसकी प्रतिक्रिया वर्णनातीत है अतः पाठकों के लाभार्थ इस साधन का वर्णन किया जारहा है और

विशेष ज़ोर दिया जाता है कि इसकी साधना अवश्य करें, चाहे समय थोड़ा ही दें।

इस साधना की विधि भी कई हैं, उनमें से सबसे सरल यहाँ दी जा रही है:—

सूर्योदय से पहले पूर्व दिशा की ओर मुँह करके आसन जमा कर बैठ जाइये। आसन जमा कर बैठने का कोई विशेष नियम नहीं है, अपितु जिन्हें आराम पूर्वक जिस आसन से बैठने की आदत हो वे मस्तक, गर्दन, पीठ और उदर को बराबर सीधा रख कर, अपने शरीर को सीधा करके बैठ जायँ। तत्पश्चात् नाभि-मण्डल में दृष्टि जमाकर कुछ देर तक पलक नहीं मारना चाहिए। नाभि स्थान में दृष्टि और मन रखने से निःश्वास धीरे-धीरे जितना कम पड़ता जायगा, मन भी उतना ही स्थिर होता जायगा। उस भाव से नाभि के ऊपर दृष्टि और मन लगाकर बैठने से कुछ दिन बाद मन स्थिर हो जायगा। मन स्थिर करते समय यदि थोड़ी-थोड़ी वायु भी धारण की जाय तो नाद ध्वनि बहुत ही जल्दी सुनाई पड़ने लगेगी। पहिले झींगुर या भृङ्गी जैसा झिं-झिं शब्द सुनाई देगा। उसके पश्चात् क्रमशः साधन करते-करते एक के बाद एक वंशी की ध्वनि, बादल का गर्जन, झांझ को झनकार, घन्टा, घड़ियाल, करताल, तुरही व मृदङ्ग प्रभृति नाना प्रकार के वाद्यों के स्वर सुन पड़ेंगे।

ऐसी ध्वनियां सुनते-सुनते शरीर रोमांचित हो जाता है और कभी-कभी चक्कर सा भी आने लगता है लेकिन साधक को किसी ओर भी आकृष्ट होने की आवश्यकता नहीं है।

बल्कि नाद ध्वनि को सुनते–सुनते चित्त को एक लय कर देने की आवश्यकता है। यदि फिर भी ध्यान केन्द्रित न हो तो आँख बन्द करके स्थिर दीपक की लौ का ध्यान करना चाहिए। उस समय स्वर या शब्द बन्द हो जायगा और साधक सर्व व्याधि से मुक्त तेजोयुक्त हो अतुल आनन्द का अनुभव करेगा जो कि अवर्णनीय और अलेखनीय है।

नित्य प्रति नाद साधन करते–करते बाद में ॐकार नाद ध्वनि सुनने में आती है, जो कि जीवन के अन्त तक जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तावस्था में भी चलती ही रहती है। हमारा शरीर और आत्मा स्वच्छ व शुद्धता का अनुभव करने लगते हैं, व्यक्तित्व में निखार आ जाता है, शरीर स्वस्थ रहता है, स्वर में गाम्भीर्य और दृढ़ता एवं आत्म विश्वास की स्वर्णिमा प्रस्फुटित होती है, मानसिक पीड़ा का विनाश होता है, कण्ठ नाड़ियां सबल होती हैं और चरित्र का विकास होता है।

स्वर परिवर्तन

बालकों की कण्ठ नली बालिकाओं की कंठ नली के समान होती है। बचपन में इसकी लम्बाई पूर्णरूपेण मनुष्य की कंठ नली की लम्बाई की केवल दो तिहाई होती है, क्योंकि बड़े होने पर स्वरतार (Vocal Cords) बढ़ जाते हैं। लड़कियों के स्वर यन्त्र में जो परिवर्तन होता है, वह बहुत सूक्ष्म होता है और इसीलिये प्रतीत नहीं होता। लेकिन गहराई और ऊंचाई के विस्तार में बहुत वृद्धि हो जाती है।

अक्सर देखा जाता है कि युवावस्था में (१८ वर्ष के लगभग) स्वर यन्त्र के बदलने पर जब विद्यार्थी तार सप्तक के स्वरों को लगाने में कठिनाई महसूस करता है तो वह उन पर विशेष बल देकर अपना अभ्यास जारी रखता है। इस भयङ्कर भूल का परिणाम स्वर नष्ट करने में बहुत सहायक होता है, अतः जहां तक स्वर आसानी से लग सके वहीं तक लगाना चाहिए। स्वर परिवर्तन की अवस्था में कुछ लोगों के मत से दो साल का आराम अवश्य करना चाहिये। लेकिन मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ, ऐसा करने से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना है। स्वर को ठीक दिशा में मोड़ने के लिये तथा उसपर संपूर्ण अधिकार करने के लिये जीवन में यही तो एक समय मिलता है जो कि दुबारा कभी नहीं आता। पाश्चात्य विद्वान श्री मैकेन्जी ने भी अपनी पुस्तक "Hygiene of the Vocal Organs" के पृष्ठ ६५ पर अन्य पाश्चात्य विद्वानों का अनुसरण करते हुए इसी बात पर जोर दिया है कि *उक्त अवस्था में सङ्गीत शिक्षा बिलकुल बन्द करदी जाय।*

मैं मानता हूँ कि इस अवस्था में अधिक रियाज़ करना स्वर-भंग को आमन्त्रित करना है, लेकिन थोड़ा-थोड़ा और सुविधानुसार का रियाज़ आवाज़ को तपे हुए स्वर्ण की तरह निखार देगा। शरीर के विभिन्न अवयवों की भांति इस अवस्था में कंठ-नली का भी विकास होता है और अधिक अभ्यास करने में इसके विकास में रुकावट पड़ने की संभावना बनी रहती है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि उस अवस्था काल को निकालने के लिये अभ्यास न करके हम इनके विकास को रोकदें और यदि ऐसा करते हैं तो हमें उन बच्चों पर भी रोक लगा देनी चाहिए जो कि फुटबॉल आदि खेलों में दौड़कर और इसी प्रकार के अन्य शारीरिक व्यायाम कर अपने शरीराङ्गों का विकास करते हैं, क्योंकि इसमें उन्हें चोट लग जाने का डर है.................!
अगर ऐसा होने लगेगा तो परिणाम स्वरूप मानवता की उन्नति अवरुद्ध हो जायेगी।

भारतीय महान गायक पं० ओम्‌कारनाथ ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'सङ्गीतांजलि' में एक स्थान पर 'स्वर साधना' पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "मेरा बाल-कंठ अतीव मधुर था और तीनों सप्तकों में सुविधा के साथ घूमता था। किन्तु यौवन आते ही फूटे मटके के सदृश मेरा कण्ठ फट गया। यह आवाज़ इतनी कर्ण-कटु थी कि मुझे स्वयं ही उस पर लज्जा आती थी। मैं क़तई गाना छोड़कर मृदङ्ग, इसराज और हारमोनियम पर रियाज़ करने लगा। किन्तु साथ ही मेरे गुरुदेव पं० विष्णुदिगंबर जी पलुस्कर की आज्ञानुसार ब्राह्म मुहूर्त में प्रातः चार बजे तानपुरा लेकर उनके सोने के कमरे के बाहर बैठकर उनके बताये हुए मार्ग से मन्द्र साधना करता रहा। बीच-बीच में वे मार्ग दर्शक सूचना देते रहते थे और मैं उस पर अमल करता था। आज मेरे कंठ में यदि कुछ है तो यह उसी साधना का परिणाम है।

बहुधा लोग गले के साथ जबरदस्ती भी करते हैं और गले के स्नायुओं पर अधिक दबाव पड़ते रहने पर भी नीचे अथवा ऊँचे स्वरों (मन्द्र सप्तक या तार सप्तक) में खूब अभ्यास करते हैं। यह तरीका गलत है और यह अन्धानुकरण गायन व गायक को विलग करते भी देखा गया है। जिस प्रकार कोई भी वाद्य अपनी ऊँचाई, चौड़ाई और चढ़ाये हुए तार की मोटाई के अनुसार एक विशेष स्वर तक जाता है तथा अधिक खींचने से तार टूट जाता है बिल्कुल वही प्रक्रिया हमारे गले के स्नायुओं पर लागू होती है। अतः ऊँचे स्वरों का अभ्यास धीरे-धीरे ही बढ़ाना लाभप्रद है।

आवाज की प्रखरता—

बहुत से लोग सोचा करते हैं कि अधिक ऊँचे स्वरों पर गाने का अभ्यास करने से ही आवाज में प्रखरता और निखार आयेगा। यह गलत है ! स्नायुओं की सहन शीलता पर निर्भर रहकर ही हमें अभ्यास की गति निश्चित करनी चाहिए। प्रखरता के लिये तो आज के विज्ञान ने अनेक यन्त्र उपलब्ध कर दिये हैं। जैसे कि आप यदि धीमी आवाज में रेडियो के किसी केन्द्र से गा रहे होंगे तो सुनने वाला व्यक्ति इच्छानुकूल आपकी आवाज तेज करके भी सुन सकता है और इसी प्रकार अधिक जोर से गा रहे होंगे तो ध्वनि नियन्त्रणकारी (Volume Control) को थोड़ा पीछे घुमाकर काम निकाला जा सकता है।

आवाज से उत्पन्न लहरों की ऊँचाई (Amplitude) पर आवाज की प्रखरता का अवलम्बन है। हम एक ही स्वर को मुँह कम खोलकर गायेंगे तो स्वर प्रसार (Volume) कम

हो जायगा। अतः मन्द्र स्वरों पर मेहनत करने वालों को लगभग १ इन्च ही मुँह खोलना चाहिये। मन्द्र स्वर साधना से आवाज में गम्भीरता और स्थिरता के अतिरिक्त एक फैलाव (Volume) भी पैदा होता है।

पहिले जमाने में जब कि ध्वनि वर्धक यन्त्र उपलब्ध नहीं थे, सङ्गीतज्ञ महफिलों में दूर तक अपनी आवाज पहुंचाने के लिये तेज आवाज का विशेष अभ्यास करते थे ताकि उनके गायन का रङ्ग भरी महफिल पर जम जाय और आवाज की बुलन्दी से अन्य सङ्गीतज्ञों की अपेक्षा उनका अधिक सम्मान हो। लेकिन इससे उनके स्वर में एक कर्कशता आ जाती थी।

आज के युग में ध्वनि-वर्धक यन्त्रों (Microphones) का प्रसार हो जाने के कारण बुलन्द आवाज करने के लिये उक्त गायकों की तरह अपनी आवाज का माधुर्य नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। हां, आवाज में प्राकृतिक बुलन्दी हो तो कोई बात नहीं और उसे कम करने की भी आवश्यकता नहीं अन्यथा वही आवाज घुटी-घुटी सी हो जायगी।

आवाज के प्रकार—

पुरुष की आवाज विशेषतः दो प्रकार की है। एक तो बेस (Bess) और दूसरी टेनर (Tenor), इसी प्रकार स्त्री की आवाज के भी दो प्रकार हैं, एक तो कोंट्राल्टो (Contralto) और दूसरी सोप्रानो (Soprano)। Bess आवाज वाले पुरुषों के लिये हारमोनियम का काले चौथे से काले पांचवें का स्वर अधिक अनुकूल रहता है। Tenor आवाज वाले पुरुषों

के लिये पहिले काले से दूसरे काले तक कोई भी स्वर उपयोगी रहता है।

Bess और Tenor के मध्य की आवाज को (Beri Tone) वेरीटोन कहते हैं, इस आवाज की प्रकृति Bess जितनी गहरी और वजनदार नहीं होती अपितु Bess से कुछ ऊँची और थोड़ी मृदुता लिये हुए होती है।

स्त्रियों की Contralto आवाज दृढ़ होती है, किन्तु कोमलता का थोड़ा अभाव रहता है। इस आवाज के लिए काले तीसरे परदे से काले चौथे तक के बीच वाले स्वर अनुकूल रहते हैं। Soprano आवाज तीक्ष्ण और ऊँची होती है, जिसकी स्वर-मर्यादा पहिले सफेद से पहिले काले तक होती है। Contralto और Soprano के साथ मेटा सोप्रानो आवाज है और इसकी स्वर मर्यादा काले चौथे और काले पाँचवे तक है।

उपरोक्त आंकड़े स्वर साधकों को विशेपतया ध्यान में रखने चाहिये, क्योंकि प्रारम्भिक ज्ञातव्य बातों पर ही जीवन की साध अवलम्बित रहती है।

स्वर के अभ्यास

गायकों को स्वर मीठा और गायन के अनुकूल बनाने के लिए नित्यप्रति कुछ स्वराभ्यास करना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि भोजन करना। एक बात और—ये अभ्यास कुछ ही काल तक के लिए नहीं हैं अपितु जीवन भर के लिए हैं। बाद में आप इनके इतने अभ्यस्त हो जायेंगे जितना कि एक पहलवान नित्य प्रति कसरत करने का। आपकी अवस्था कितनी भी क्यों न हो जाये, लेकिन ये अभ्यास बराबर जारी रहेंगे।

प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले निवृत्त होकर तानपूरा लेकर बैठ जाइये। जिन लोगों को तानपूरा मिलाना न आता हो, वे जबरदस्ती उसे मिलाने की व्यर्थ चेष्टा कर अपनी योग्यता का परिचय न दें अन्यथा स्वर बजाय ठीक होने के धीरे-धीरे इतना भद्दा और बेसुरा हो जायगा कि विश्व का कोई भी सङ्गीत-चिकित्सक उसको ठीक न कर सकेगा। ऐसी दशा में तानपूरे के तीन तारों को तो उतार देना चाहिए और केवल एक तार अपने साधारण स्वर की ऊंचाई नीचाई के अनुपात से मिला लेना चाहिए। जिनके पास तानपूरा न हो, वे इकतारा अथवा हारमोनियम का एक स्वर खोलकर भी काम चला सकते हैं। लेकिन यथा सम्भव स्वर साधक के पास तानपूरे का होना अति आवश्यक है।

कमरे में धूपबत्ती या अगरचन्दन की सुगन्ध करदी जाय तो और भी अच्छा, क्योंकि इससे चित्त-वृत्तियां स्थिर होकर

हृदय स्वच्छता, भावुकता तथा कोमलता का अनुभव करता है। अब स्वर को कुछ देर तक छेड़ते रहिये—आप देखेंगे कि उस वातावरण में हृदय गाने को स्वयं उद्वेलित हो उठता है। यदि ऐसा होने लगे तो समझ लीजिये कि आपके अन्दर कलात्मकता का बीजारोपण हो चुका है।

अभ्यास १—अपने वाद्य के प्रवाहित स्वर में मुँह बन्द करके नाक के स्वर में स्वर मिलाइये। कुछ देर यही क्रिया दोहराते रहिये जब तक कि आपको पूरा विश्वास न हो जाय कि स्वर में स्वर ऐसा मिल गया जैसे कि दूध में पानी। चेष्टा यह करिये कि एक सांस में अधिक से अधिक देर तक जमा जाय। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि स्वर को आप इतना लम्बा खींचें कि उसमें कंपन पैदा हो जाय, फटने लगे, तीखापन आजाय अथवा गले की नसों में दर्द होने लग जाय। बल्कि आराम और आसानी से जितना लम्बा स्वर खिंच सके उतना ही खींचिये ताकि षड्ज गले में अपना एक रास्ता कायम करले। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि रेतीली ज़मीन या बालू पर पानी डाल देने से, कुछ दूर बहकर वह सूख जाता है और अपनी एक दरार बना लेता है। फिर उस जगह पर दोबारा पानी डाला जाय तो वह उसी दरार में होकर बहता है, इधर-उधर नहीं जाता। इसी प्रकार आपका षड्ज दृढ़ स्तम्भ के अनुसार हो जायगा और उसकी मधुरिमा बजाय इधर-उधर फैलने के एकत्रित हो जायगी; मंच पर प्रदर्शन के समय षड्ज लगते ही लोग स्वरसागर में डूबकर खोजायेंगे। मुहाविरा तो आपने सुना ही होगा—'अरे साहब षड्ज लगते ही मजा आ गया!'

अभ्यास २—पांच मिनिट तक पहिला अभ्यास करने के बाद नाक के स्वर से ही रे, ग, म, प, ध, नि, सां स्वरों पर दो-दो

मिनिट तक गुंजन करिये। ध्यान रखिये, आपको स्वर ज्ञान न हो तो इन्हें न करिये।

अभ्यास ३—ऊपर के षड्ज अर्थात् सां पर जाकर रुक जाये और क्रमशः उसी गति से लौट आइये। अब कुछ क्षण विश्राम लीजिये।

अभ्यास ४—मध्य षड्ज पर 'कू' शब्द बोलिये। जब इसमें सफाई दृष्टिगोचर होने लगे तो एकदम पंचम के स्वर में इसी शब्द को बोलिये और उसके बाद तार सप्तक के सां में। जैसे—

सा – – –	प – – –	सां – – –	सां – – –
कू ऽ ऽ ऽ	कू ऽ ऽ ऽ	कू ऽ ऽ ऽ	कू ऽ ऽ ऽ

इस क्रम को पांच मिनिट कर सकते हैं। फिर थोड़ा विश्राम लेकर नं० ५ के अभ्यास को तैयार हो जाइये।

अभ्यास ५—षड्ज पर 'कू' की बजाय अब 'ओ' शब्द बोलिये और उसके बाद तार षड्ज पर बोलिये अर्थात् सा से सां तक 'ओ' कहते हुए मींड द्वारा जाइये। जैसे—

सा – – सा सां – – –

ओ ऽ ऽ ओ ऽ ऽ ऽ ऽ

जो लोग मंद्र सप्तक के पंचम तक जा सकते हों वे इस अभ्यास को इस प्रकार करें:—

प़ – – – सा – – – प – – – सां – – –

ओ ऽ ऽ ऽ ओ ऽ ऽ ऽ ओ ऽ ऽ ऽ ओ ऽ ऽ ऽ

अभ्यास ६—

सा ग	प ध	सां ध	प ग	सा ग	प ध	सां ध	प ग
ए ऽ	ऽ ऽ	ई ऽ	ऽ ऽ	ऊ ऽ	ऽ ऽ	ओ ऽ	ऽ ऽ

तीन मिनिट तक इसे करने के पश्चात् थोड़ी देर के लिये लेट कर आराम करें। इसी प्रकार उपर्युक्त अभ्यास क्रम नित्य प्रति चलाते रहें। एक माह के अन्दर ही आपको अपनी ध्वनि में परिवर्तन दिखाई देगा।

अक्सर देखा गया है कि शिक्षक गण विद्यार्थी को प्रत्येक स्वर पर खूब जोर देकर गवाते हैं या अभ्यास करने को बाध्य करते हैं। यह तरीका आवाज के लिये भयंकर सिद्ध होता है। अतः कोई भी व्यक्ति गले पर अधिक जोर देकर किसी प्रकार का अभ्यास न करें। अभ्यास करते-करते आवाज स्वयं तेज हो जायगी। यहाँ मैंने जो अभ्यास दिये हैं वे केवल स्वर को मधुर करने की दृष्टि से दिये हैं न कि गायन के विविध अङ्गों का रियाज करने के लिये। सफल गायक बनने के लिये कण्ठ सङ्गीत के विविध अभ्यासों की एक अलग ही पुस्तक लिखी जायगी।

स्वर के अन्य अभ्यास जो कि गायन के विद्यार्थी नित्यप्रति करते हों वे उपर्युक्त अभ्यासों से अलग ही करें न कि इनमें उनका समावेश करदें।

वक्ताओं के लिये—

बिना किसी साज के प्रातःकाल नाक के स्वर से पांच मिनिट लगातार गुनगुना लिया करें और दिन में दस बार किसी भी

समय सुविधा से निम्नलिखित वाक्य को जल्दी से जल्दी बोल लिया करें:—

'ताटीतूटेतोटंकू'

इससे आपकी भाषा में आश्चर्यजनक स्पष्टता एवं लोच आजायगा। इस वाक्य का अभ्यास होजाय तो इसे करना चाहिये:-

'ताताटीटीतूतूटेटेतोतोटंटंकूकू'

इन वाक्यों की गति स्पष्ट रूप से जितनी आप बढ़ा सकें, उतना ही लाभप्रद होगा।

मन्द्र साधना पर पं० ओमकारनाथ ठाकुर के निजी अनुभव—

प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व अपने स्वर का जो षड्ज हो, उस षड्ज से मंद्र में नीचे से नीचे जहां तक आवाज जा सके, वहां पर कण्ठ स्थिर करके दीर्घ समय तक उस स्वर का प्लुतोच्चार किया जाय। भिन्न-भिन्न शारीरिक शक्ति के अनुसार तथा कंठस्थित ध्वन्युत्पादक नाड़ियों (Vocal Chords) की रचनानुसार आरम्भ का स्वर भिन्न-भिन्न हो सकता है। सामान्य रूप से अपने मध्य षड्ज से कम से कम पांच स्वर मन्द्र में आवाज जा सके, ऐसी मर्यादा बांधकर ही मध्यषड्ज निश्चित किया जाय। ढाले स्वर से गाने वाले कुछ लोग ऊँचे स्वर वाले अपने शिष्यों को भी ढाले स्वर से गाने के लिये बाध्य करते हैं, और इस प्रकार स्वाभाविक प्रकृति बिगड़ने से मूल्यवान आवाज नष्ट होजाती है। ऐसी सभी दृष्टियों को ध्यान में रखकर ही मंद्र साधना की जाये।

अपने मध्य षड्ज के नीचे जितना स्वर मन्द्र षड्ज (खरज) को लगा सकता हो, वे कम से कम १५ मिनिट और अधिक से अधिक आधा घण्टा तक मन्द्र के षड्ज पर कण्ठ को स्थिर करें।

अकार, आकार, ईकार, ऊकार, ओकार इत्यादि स्वरों से उसका उच्चार किया जाये। अकारादि भिन्न-भिन्न उच्चारों के समय कण्ठ में कुछ परिवर्तन होते हैं, जिनसे फेफड़ों पर, श्वास नली पर एवं उदर पर भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं। षड्ज पर कम से कम पांच मिनिट और अधिक से अधिक दस मिनट तक रिषभ को स्थिर करें। उसी क्रम से गान्धार, मध्यम, धैवत, निषाद को एक-एक करके स्थिर करते हुए मध्य षड्ज तक पहुंचा जाये। इसके बाद—४, २, १, ½, ¼, ⅛ आदिक मात्राओं से निबद्ध तानों का अभ्यास किया जाये। और भिन्न-भिन्न रागों में भिन्न-भिन्न अलंकारों को कण्ठ में बिठाया जाय। तान क्रिया के अभ्यास के समय रुचि अनुसार और समयानुसार भिन्न-भिन्न रागों का उपयोग किया जाये। अकारादि स्वर-समूहों का षड्जादि सङ्गीत के स्वरों के साथ उच्चार करने के अभ्यास से भावानुकूल नाद की अभिव्यंजना करने की क्षमता आजाती है।

मन्द्र साधना के पश्चात् और गाने के अभ्यास के बाद विद्यार्थी यह सदैव ध्यान रक्खें कि तत्काल ताल मिश्री की एक डली मुँह में डाल ली जाय। इससे कण्ठ और ध्वन्युत्पादक नाड़ियाँ (Vocal Chords) जिनमें खुश्की पैदा हुई होगी, वे स्निग्ध और तर हो जायेंगी। पंद्रह बीस मिनट पश्चात् उबले हुए दूध में एक चम्मच घी और मिश्री डालकर पचन के अनुसार पी जाऐं। संभव हो तो बादाम का हलुआ बनाकर उस पर से यह घी वाला दूध पी लिया जाये। यदि संभव न हो तो कुछ बादाम घिसकर (पीसकर नहीं) दूध में मिलाकर पी लिये जाएं।

मन्द्र साधन के सम्बन्ध में इतना कहने के बाद कंठ, फेफड़े, छाती श्वास नलिका उदर भाग इत्यादि के सम्बन्ध में भी कुछ कह देना उचित है।

सामान्यतः यह लोक वाक्यता है कि गायकों को व्यायाम नहीं करना चाहिये, किन्तु यह धारणा वास्तविक तत्व पर आधारित नहीं है। यदि मुझे निजी अनुभव के बल पर कहने का अधिकार हो, तो मैं कह सकता हूं कि मैं नित्य प्रति लगातार सवा घन्टे तक साढ़े सात सौ दण्ड लगाया करता था और आठ-आठ मील तक तैरने का मेरा अभ्यास था। साथ ही मुझे कुश्ती का भी शौक़ रहा। फलस्वरूप विश्व विजयी पहलवान गामा के अखाड़े में खेलने का और उनसे भी थोड़ी तालीम पाने का मुझे सौभाग्य मिला है। छाती में बल न हो, श्वासोच्छ्वास स्वाधीन न हो, तो वांछित आवाज लग नहीं सकती, लगाने के लिये मन भी उद्दयन नहीं करेगा। कसरतबाज मनुष्य मनोवृत्ति से सहज ही ब्रह्मचर्य का पालन करने में बल पाता है, बल्कि विषय के प्रति अनिच्छा सी रखता है और गान-विद्या में ब्रह्मचर्य का पालन एक अनिवार्य शर्त है। इन सभी दृष्टि बिन्दुओं से मैं यह कह सकता हूँ कि गान क्रिया की कुशलता के लिये इस गान में प्रभाव पैदा करने के लिये व्यायाम और प्राणायाम दोनों को ही करना जरूरी है। व्यायाम और प्राणायाम दोनों ही एक साथ सध जायें, ऐसे मेरी राय में दो व्यायाम हैं—एक सम्पन्न सूर्य नमस्कार और दूसरा तैरना। जिन्हें इन दो में से किसी की भी अनुकूलता न हो, वे अपनी शक्ति के अनुसार दण्ड बैठक लगाएं और प्राणायाम करलें। यौगिक प्राणायाम और सङ्गीतोपयोगी प्राणायाम में कोई विशेष अन्तर नहीं है। हां, सङ्गीतोपयोगी प्राणायाम में क्रमशः अधिकाधिक कुम्भक किया जाय। किन्तु जब प्राणायाम किया जाय, तब सिद्धासन पर आरूढ़ होकर ही किया जाय।

मन्द्र साधना के समय और गाते समय भी दो आसन प्रशस्त माने हैं—एक वीरासन, जिसमें बांया घुटना मोड़कर, उसी ऐड़ी से गुह्य और गुदा के बीच के स्थान को दबा कर दाहिना घुटना खड़ा रक्खा जाता है। श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया के लिये यह आसन उचित माना गया है। दूसरा आसन सिद्धासन है, इसमें भी बांयी ऐड़ी को गुह्य और गुदा के बीच में दबाकर दाहिना पैर बांई पिंडली पर चढ़ाकर बैठा जाता है। 'समकायशिरोग्रीव'—इस वचनानुसार सीधे-रीढ़ का कोई हिस्सा झुकने न पाये—इस प्रकार बैठकर आसन जमाया जाये। गाते समय गर्दन इधर उधर घूमती रहे, लेकिन मन्द्र साधना के समय हनु (ठुड्डी) कण्ठदेश में लगाकर ही साधना की जाए।

इस प्रकार की साधना भी एक प्रकार से यौगिक साधना ही है। बल्कि यौगिक क्रिया में तो मनःस्थैर्य के लिये बड़े अभ्यास करने पड़ते हैं, जब कि सङ्गीत में अनायास मन स्थिर हो जाता है। यदि साधक साधना के अवसर पर अकार उकारादि स्वरों पर स्थिर होते समय ओंकार का दीर्घ उच्चार करने के बाद मुख बन्द करले और 'ओम्' के 'म्' का दीर्घकाल तक बन्द मुख से उच्चारण करें, तो उससे मस्तक प्रदेश में एक प्रकार की झनझनाहट पैदा होगी, जिससे उस प्रदेश के अविकसित विभाग खुल जायेंगे। दुनियां भर की Faculties (शक्तियां) मानव मस्तिष्क में ही सन्निहित हैं। उनके विकास से ब्रह्म और ब्रह्मांड का दर्शन भी सहज हो जाने की संभावना है।"

स्वर को सुन्दर बनाने में
सहायक
प्राकृतिक साधन

—:○:—

मानव शरीर का प्रकृति से बहुत गहरा सम्बन्ध है। हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं जबकि मनुष्य ने प्रकृति के बहुत सारे रहस्यों को खोल कर रख दिया है और प्रकृति के गूढ़तम नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद उसे अपने अनुकूल कर लिया है। प्रकृति में अनेक ऐसे तत्व बिखरे पड़े हैं जो हमारी स्वर साधना में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। साथ ही अनेक ऐसे तत्व भी हैं जो हमारे स्वर को हानि पहुंचाते हैं। इन दोनों प्रकार के तत्वों का सम्यक् ज्ञान एक स्वर साधक के लिए नितान्त आवश्यक है।

स्वच्छ वायु—

स्वच्छ वायु स्वास्थ्य के लिए जितनी आवश्यक है उतनी ही स्वर के लिए भी है। स्वच्छ वायु में प्राणायाम करने से फेफड़े मजबूत होते हैं और स्वर यंत्र को बल पहुंचता है। जहाँ तक सम्भव हो सके अति प्रातःकाल उठकर स्वच्छ वायु में टहलना चाहिए। श्वास हमेशा नाक से लेनी चाहिए। ध्यान रहे प्राणायाम के समस्त अभ्यास खुली और साफ हवा में ही होने चाहिए।

ओस—

किसी बाग में सूर्योदय से पूर्व जाकर चम्पा, चमेली, जूही, गुलाब अथवा कमल के फूलों की तलाश करिए और इनमें से

जैसे ही कोई फूल मिल जायें, उनके ऊपर रात्रि के पड़े हुए ओस बिन्दुओं को उङ्गली से ले लेकर गले पर मलिये और चाटिये भी; इससे ऊँची आवाज (तार सप्तक की ध्वनि) निकालने में आपको बड़ी सहूलियत मिलेगी और आवाज का फटना या उसमें दरारों का पड़ना समूल नष्ट हो जायगा।

जल—

स्वर साधक को चाहिए कि पानी का जितना अधिक उपयोग कर सके, करे। पानी जहाँ तक हो सके उबला हुआ हो। भारी पानी (Heavy water) स्वर पर बुरा प्रभाव डालता है।

नासिका द्वारा पानी—

यह अभ्यास स्वर नलिका के लिये एक वरदान समझना चाहिये! इसको नित्य प्रति करने में अधिक समय नहीं लगता। शौच से आकर जिस समय मुँह आदि साफ़ करें उस समय इस क्रिया को कर सकते हैं। जाड़ों में हल्के गर्म जल और गर्मियों में शीतल जल का प्रयोग करना चाहिये। कुए का ताजा पानी प्राप्त हो सके तो और भी उत्तम है।

एक कटोरी में पानी लेकर नाक से लगाकर, उसी प्रकार पीने की कोशिश करिये जिस प्रकार कि मुँह से पीते हैं। प्रारम्भ में यह कार्य देखने में और करने में बहुत असुविधा-जनक और विचित्र

लगेगा किन्तु एक सप्ताह के बाद ही बिना इस क्रिया के आप रह भी नहीं सकेंगे। दो तीन दिन तक नाक मे पानी चढ़ाने के पश्चात् नाक के अन्दर कुछ हलचल होगी जैसा कि नदी में नहाते समय कभी-कभी नाक में पानी चले जाने से होती है, किन्तु कुछ दिनों बाद यह भी बन्द हो जायेगी और आप अपने स्वर में एक आश्चर्यजनक सफाई और गोलाई पायेंगे। पानी की मात्रा धीरे-धीरे पूरे एक छोटे ग्लास तक बढ़ाई जासकती है।

इस क्रिया को करने वालों को जीवन भर जुकाम की शिकायत नहीं होगी इसकी गारण्टी है और एक सङ्गीतज्ञ को कभी जुकाम न हो तो यह उसके शरीर और स्वर के लिए वरदान ही है।

ऊर्मि स्नान:—

गर्मी के दिनों में किसी नदी पर जाइये और सारे शरीर पर कड़वे तेल की मालिश करके पानी के अन्दर घुसिये और उसमें बैठ जाइये। ध्यान रखिये कि पानी की सतह ठोड़ी से ऊपर न रहे बल्कि पूरे गले तक ही रहे। तत्पश्चात् षड्ज का उच्चारण करिये और उसके बाद धीरे-धीरे मींड द्वारा तार षड्ज लगाइये। बीच में किसी भी स्वर पर न ठहरें। जैसे सा सां। कुछ देर तक इस क्रिया के पश्चात् तार षड्ज से मध्य षड्ज इसी प्रकार लगाइये जैसे सां सा। दस मिनिट बाद आपको अपने स्वर में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर होगा। अब आप शुद्ध स्वरों में आरोहावरोह भी कर सकते हैं। इस प्रकार ऊर्मि स्नान की क्रिया आधा घन्टे रोज करते रहने से स्वर में लचीलापन आजायगा तथा आकर्षण और मधुरता भी आजायगी।

ऊर्मि स्नान के पश्चात् थोड़ा हल्का गर्म दूध ले लिया जाय तो और भी अच्छा है। समुद्र के आसपास रहने वाले लोगों को ऊर्मि स्नान समुद्र की लहरों में ही करना चाहिये और वह नदी की लहरों से अधिक लाभदायक सिद्ध होगा ।

वाष्प स्नान–

वाष्प स्नान शरीर के विभिन्न अङ्गों को सहायता पहुंचाते हैं और इनके द्वारा बहुत से रोग भी दूर किये जाते हैं। स्वस्थ व्यक्ति भी इनका प्रयोग करें तो उन्हें बहुत लाभ पहुँचता है । यहाँ एक विशेष वाष्प स्नान का
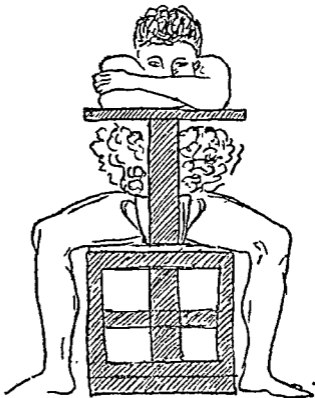
विवरण दिया गया है, जो गले और स्वर को विशेष रूप से सहायता पहुंचाता है।

भाप के बर्तन को बेंच या कुर्सी के ऊपर एक तख्ते पर रखिये और सर तथा गर्दन में उस समय तक भाप दीजिये जब तक पसीना न निकलने लगे। स्नान लेते समय शरीर को अच्छी तरह एक ऐसे वस्त्र या कम्बल से ढक लीजिये, जिसमें होकर भाप आसानी से बाहर न निकल सके। यह स्नान आवश्यकतानुसार १५ मिनट से आध घण्टे तक लिया जा सकता है। एक बर्तन की भाप समाप्त होने के पूर्व ही दूसरे तैयार बर्तन की भाप पहुँचानी चाहिए।

स्नान के उपरान्त पसीने को पोंछ कर शरीर के ऊपरी भाग को अच्छी तरह पोंछ कर ढक देना चाहिए।

यह स्नान गले के तमाम दोषों को दूर करता है और रुँधे हुए स्वर को खोलने में मदद पहुँचाता है।

कन्दरा घोष—

आप जिस स्थान पर रहते हैं यदि उसके निकट कोई कंदरा, गुम्बद, तहखाना या कुँआ हो, जहां आपकी आवाज पूरी तरह गूँज सके तो ऐसे स्थान पर जाकर ऊँचे स्वर में गाइये अथवा पुकारिये। स्वर को भिन्न-भिन्न ऊँचे-नीचे स्वर पर लाकर अभ्यास कीजिये। तथा अपनी आवाज की गूँज को ध्यानपूर्वक सुनिये। इस अभ्यास से आवाज में गूँज पैदा होती है तथा जो प्रतिध्वनि आप सुनते हैं यह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक उपचार है। यदि आपको ऊपर लिखा कोई साधन प्राप्त न हो

सके तो किसी घने जङ्गल में चले जाइये और स्वर को भिन्न-भिन्न ऊँचे-नीचे स्तर पर लाकर अभ्यास कीजिये। यह भी सम्भव न हो तो किसी पक्की मिट्टी के घड़े में मुँह डाल कर गाइए।

यदि ये अभ्यास सावधानी तथा नियमित रूप से किए जाँय तो इनसे आवाज में गूँज पैदा हो जायेगी तथा स्वर तराशे हुए निकलेंगे।

दाढ़ी का विकास—

एक स्वर सम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तक में मैंने पढ़ा था कि दाढ़ी के बाल बढ़े हुए रखने से स्वर माधुर्य में विकास होता है। यह कथन लगता तो हास्यास्पद है किन्तु किसी वैज्ञानिक तथ्य की खोज के उपरान्त लेखक ने ऐसा लिखा हो, यह भी हो सकता है। और फिर है भी यह सरल चीज ! चाहें तो पाठक इसका भी प्रयोग करके देखें।

गर्दन व्यायाम—

खुली हवा में नित्य प्रति प्रातःकाल के समय गरदन व्यायाम निम्न विधि से कीजिए।

नं० १—दोनों हाथ पीछे की ओर कमर पर बंधे रखकर, सामने से कमर से थोड़ा झुकिए; अनंतर दोनों हाथों को एक साथ नितम्ब के नीचे सीधा ले जाएं। इससे कंधे आप ही ऊपर उठेंगे, इसके पश्चात् सिर को दायें और बांये घुमाना चाहिए।

नं० २—दोनों हथेलियों को ललाट पर रखकर तथा सांस रोककर सिर को जितना बने पीछे ढकेलने और सिर से प्रति-शक्ति

लगाकर सिर को पीछे न जाने देने का यथा संभव किन्तु सावकाश प्रयत्न करना चाहिए।

नं० ३—दोनों पंजों की पकड़ नीचे झुकी गर्दन पर रख गर्दन को नीचे दबाने का और दबी हुई गर्दन को भरसक ऊपर लाने का सावकाश प्रयत्न करना चाहिए।

(चित्र नं० १)

नं० ४—केवल सिर को दाईं ओर से बाईं ओर फिर बाईं ओर से दांईं ओर चक्राकार घुमाना चाहिये।

नं० ५—गर्दन आगे झुकाकर अपनी छाती देखिए, कुछ देर इस स्थिति में रहकर ऊपर गर्दन करके आकाश की ओर देखिए तत्पश्चात् कुछ देर आराम कर गरदन बांये और दांएं इसी प्रकार ठहर-ठहर कर करते रहिए।

(चित्र नं० २)

ध्यान रखिए, प्रत्येक स्थिति में शरीर सीधा रहेगा और हाथ पीछे।

इन आसनों को करके गले पर ऊपर से नीचे की ओर उङ्गलियों के सिरों को हल्के हाथ से फिरा लेना चाहिए।

(चित्र नं० ३)

———

परहेज़ और इलाज

मानव शरीर एक जीवधारी (Organism) है, जिसमें शरीर के विभिन्न अङ्ग अनिवार्य रूप से एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। यदि आपको पेट की शिकायत है तो उसके साथ-साथ सर दर्द होना तथा आंखों में जलन होना स्वाभाविक है। यदि आप ज्वर से पीड़ित हैं तो आपके शरीर के समस्त अङ्ग शिथिल हो जाते हैं और ज्वर के बढ़ जाने पर आप बड़बड़ाने लगते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे शरीर के सामान्य स्वास्थ्य का प्रभाव हमारे स्वर पर पड़ना स्वाभाविक है। यदि हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो हमारी आवाज़ स्वतः ही भारी और शिथिल पड़ जाती है। इसी प्रकार यदि हमारा मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो हमारा स्वर भी ठीक नहीं रह सकेगा।

स्वर साधक के लिये यह परमावश्यक है कि उसका मन और शरीर दोनों पूर्णरूपेण स्वस्थ रहें। शरीर को किस प्रकार स्वस्थ रक्खा जा सकता है, इसे विस्तार में बतलाने की आवश्यकता यहां नहीं है, क्योंकि साधारणतः प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य के साधारण नियमों से परिचित है। यहां स्वर साधकों के लिये कुछ विशेष बातें बतलाई जाती हैं, जिन्हें जानना उनके लिये नितान्त आवश्यक है।

यह तो हमें भली भांति समझ ही लेना चाहिए कि हमारे स्वास्थ्य का हमारे स्वर पर बड़ा असर पड़ता है, किन्तु साथ ही हमें यह भी जानना चाहिए कि वे कौनसी चीज़ें हैं जो स्वर-साधक के लिये विशेष रूप से हानिप्रद हैं?

स्वर का शत्रु—

स्वर का भयङ्कर शत्रु है जुकाम, सर्दी जिससे प्रायः हम सभी परिचित हैं। जुक़ाम भी दो प्रकार का होता है। एक होता है साधारण (Casual) जुक़ाम और दूसरा पुराना (Chronic) जुकाम। साधारण जुकाम आमतौर से सभी को कभी न कभी होता रहता है और प्रायः बिना औषधि के स्वयं दो-तीन दिन में ठीक भी हो जाता है, किन्तु (Chronic) जुकाम एक गम्भीर वस्तु है। यह प्रायः साधारण जुकाम के बिगड़ जाने पर होता है।

स्वर साधक को चाहिए कि वह जुक़ाम से बचने का भरसक प्रयत्न करे। जुक़ाम हो जाने पर लापरवाही न करके फौरन उसका इलाज करे। बार-बार जुकाम लगने से आवाज़ खराब हो जाती है, इसलिए कोशिश यह की जानी चाहिए कि जुक़ाम हो ही नहीं। यहां जुकाम लगने के कुछ कारण दिये जाते हैं, जिनका ध्यान रखने से जुकाम से बचाव हो सकता है।

(१) जाड़ों में शरीर का तापमान वायु मण्डल के तापमान से अधिक रहता है अतएव यदि शरीर को खुला रहने दिया जाय तो सर्दी लग सकती है। सीने और गले की विशेष रूप से रक्षा की जानी चाहिए।

(२) गरम कमरे से एकदम ठण्ड में आने से अर्थात् एक दम से तापमान परिवर्तन करने से जुकाम लग जाता है।

(३) ओस में सोने या रहने से।

(४) गरमी के मौसम में ज्यादा ठंडी चीज़ें खाने से।

(४) किसी भी प्रकार शरीर की तापमान सहने की शक्ति पर अनावश्यक दबाव डालने से।

(Chronic) पुराना जुकाम होने पर विशेष सावधानी की जरूरत पड़ती है। ऐसी स्थिति में किसी डाक्टर से परामर्श लेकर रोग को मिटाना चाहिये अन्यथा वह कभी आपके स्वर को ठीक नहीं होने देगा।

जुकाम ठीक करने के लिये निम्नलिखित नुस्खा इस दृष्टि से दिया जारहा है कि ये डाक्टरी दवाओं की अपेक्षा सस्ता पड़ता है और प्रत्येक व्यक्ति इसका प्रयोग कर सकता है।

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नव्य, धनिया, जीरा और सेंधा नमक—ये दस दवाइयां प्रत्येक एक-एक तोला, पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, लोह भस्म २ तोले, सुहागे का लावा ८ तोले और कालीमिर्च ४ तोले। इन सब दवाओं को बकरी के दूध में पीसकर १-२ रत्ती की गोलियां बना लीजिये।

सर्दी जुकाम की थोड़ी सी शिकायत होने पर इन गोलियों को एक-एक करके दिन भर में ४-५ गोलियां मुँह में रखकर चूसते जाइये, इससे जुकाम ठीक हो जायेगा और गला साफ रहेगा।

सुषिर वाद्य—

गायकों को फूँक के बाजे (सुषिर वाद्य) कभी नहीं बजाने चाहिये। देखा जाता है कि मनोरंजन के लिए बहुधा गायक अथवा स्वर साधक बांसुरी, माउथऑर्गन, क्लारनेट, सैक्सोफोन, शहनाई और अन्य इसी प्रकार के फूँक के बाजों को बजा-कर

बजाया करते हैं, यह बहुत ही हानिकारक सिद्ध होते हैं। प्रमाण के लिये मधुर स्वर में अलापिये, कुछ ही देर बाद थोड़ी सी देर बांसुरी बजाइये और उसे रखकर फिर पूर्ववत् मुँह से अलापिये। आप देखेंगे कि स्वर की सारी मधुरता नष्ट होकर इसमें कर्कशता आ जाती है।

इसके विपरीत सुपिर वाद्यों को सुनना स्वर साधक के लिये परम आवश्यक है, क्योंकि गला सुपिर वाद्यों का अथवा सुपिर वाद्य गले का एक दूसरा रूप है, अतः सुपिर वाद्यों के प्रोग्रामों को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

हिचकी—

हिचकी यूँ तो मामूली चीज है, किन्तु स्वर साधक को इससे विशेष सावधान रहना चाहिये। हिचकी का सीधा असर हमारे स्वर यन्त्र पर पड़ता है। यदि हिचकी अधिक समय तक रह जाय तो उससे स्वर यन्त्र को हानि पहुँचती है। अतएव हिचकी यदि शीघ्र शान्त न हो तो सांस रोककर प्राणायाम करने से हिचकी फ़ौरन शान्त हो जाती है या फिर बिजौरे या नीबू के दो तोले रस में ३ माशे नमक मिलाकर पिलाने से हिचकी शांत हो जायेगी। हिचकी आने पर फौरन पानी पीने से भी कभी-कभी लाभ होता है।

भोजन—

स्वर-साधक को अपने दैनिक भोजन पर ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि भोजन मुलायम और शक्ति वर्धक हो। अधिक गर्म या अधिक ठण्डा भोजन,

भी नहीं करना चाहिये। तेज मसालेदार चटपटे भोज्य पदार्थ भी निषिद्ध हैं। तेज मिर्चें, खटाई, अचार भी स्वर को बिगाड़ देते हैं। बाजार की बनी तेल और वनस्पति घी की चीजें तो बिल्कुल ही नहीं खानी चाहिये। शुद्ध घी यदि प्राप्त न हो तो शुद्ध तैल का उचित मात्रा में प्रयोग करना ही ठीक है।

मांसाहारी व्यक्तियों के लिये हिरन का गोश्त अच्छा रहता है क्योंकि अन्य प्रकार के गोश्त मुश्किल और देर से पचने वाले होते हैं। सलाद भी फ़ायदेमन्द है। लेकिन जहां तक हो सके मांस के सेवन का त्याग करना ही श्रेष्ठकर है। बहुत से स्थानों और प्रदेशों तथा देशों में तो मांस का इतना अधिक प्रचलन है कि इसको छोड़ना असम्भव है। लेकिन स्वरमाधुर्य की रक्षा के निमित्त यदि इस पर विचार कर लिया जाय तो यह त्याग बड़ी आसानी से हो सकता है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों और शास्त्रों में आयुर्वेदाचार्य तथा शास्त्रकारों का भी यही मत पाया जाता है कि आमिष भोजन से आवाज धीरे-धीरे कर्कश होती जाती है और उस सूक्ष्म गति का अनुभव कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता। ऐसी बातों के प्रभाव से परिणाम यदि तुरन्त ही ज्ञात हो जाय तब तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी आदत जल्दी से सुधार ले; अतः आचार्यों के कथनानुसार चलना ही श्रेयस्कर होगा। और फिर मांस खाने से मलमार्गों का कार्यभार दूना हो जाता है और शरीर मल तथा विष से भर जाता है। प्रत्येक प्राणी के शरीर में निर्माण और ध्वंस की क्रियाएँ हमेशा चलती रहती हैं। लाल रक्त शरीर के विभिन्न भागों में पोषक तत्वों को ले जाता है और विषाक्त गैस, मृतकोषाणु आदि लेकर लौटता है। यह मल शिराओं के जरिए मल मार्गों से

पहुंचकर स्वेद, मूत्र, श्लेष्मा आदि के साथ बाहर निकला करता है। शिरा में प्रवाहित होने वाले रक्त की हरएक बूँद और प्राणी के शरीर का हर एक खण्ड विषाक्त मलों से भरा रहता है। इसलिए मांस खाने वालों को अपने शरीर के मलके अलावा खाये हुए मांस में के मल को भी बाहर निकालना पड़ता है जो मल मार्गों के लिए कठिन होता है।

आमिष-निरामिष भोजन के प्रभाव की जानकारी हम जीव जंतुओं से करें तो उससे भी बहुत बड़ा सबक़ मिल सकता है। सर्व प्रथम हम कोयल और कौवा को ही देखते हैं; कोयल सदैव धान्य और फलों पर ही अपना निर्वाह करती देखी जाती है जबकि कौवा सदैव मांस की तलाश में रहता है। दोनों के स्वर आपस में कितने भिन्न हैं यह प्रत्येक को भली-भांति विदित है। इसी प्रकार तोता, मैना, कबूतर, मोर और पपीहा आदि अधिकांश धान्य और फलों का भोजन करते देखे जाते हैं, इनके विपरीत, गिद्ध, चील और उल्लू आदि पक्षी जो कि अधिकांश मांस पर ही निर्वाह करते हैं, का उदाहरण भी लिया जा सकता है।

आजकल इटली सङ्गीत में जो प्रगति कर रहा है उसका एक मात्र कारण भी यही है कि वहां के लोग निरामिष बनते जारहे हैं और हमारे यहां के लोग तो अपनी सभ्यता के विपरीत भी आमिष भोजन की ओर ही बढ़ते देखे जाते हैं, क्योंकि ऐसे अनुसरण को वे नई सभ्यता का अङ्ग मानकर चलते हैं।

आवाज के लिये पके फल अत्यन्त फ़ायदेमन्द हैं और वे शीघ्र ही हजम हो जाते हैं। सब तरह के सूखे फल, विशेषकर खाने के बाद लेने में, बहुत ही हानिकारक हैं और पाचन रस को सोख लेते हैं। भोजन के समय थोड़ी मात्रा में पेय भी लिया जा

सकता है। भोजन में नियमितता भी बहुत आवश्यक है और इसका ध्यान प्रत्येक स्वर साधक को विशेष रूप से रखना चाहिये।

खाना खाने के बाद कितनी देर गाना चाहिये यह वास्तव में भोजन और मेदा शक्ति पर निर्भर करता है। वैसे तो आमतौर से नाश्ता के दो घन्टे बाद, दोपहर के भोजन के तीन घन्टे बाद और हल्के भोजन के डेढ़ घन्टे पश्चात् गाया जा सकता है।

नशीले पदार्थ—

नशीले पदार्थों का स्वर पर क्या प्रभाव पड़ता है यहाँ उसी पर विचार किया जायेगा।

जाँच करने पर यह परिणाम निकला है कि नशीली वस्तुओं में शक्ति वर्धता बिलकुल नहीं होती। तब इनका शारीरिक क्रियाओं पर क्या असर होता है? केवल इतना ही कि गर्मी पैदा होती है, शरीर में इनके पहुँचते ही एक प्रकार का दाह उत्पन्न होता है जोकि संपूर्ण शरीर में फैल जाता है। यह गर्मी क्षणिक होती है जो कि शीघ्र ही समाप्त होकर निराशा और शिथिलता उत्पन्न करती है। अतएव यह परिणाम निकला कि नशे से कोई लाभ नहीं होता, केवल आवश्यकता पड़ने पर क्षणिक जोश लाया जा सकता है जोकि बहुत ही मँहगा पड़ता है। स्वर में शिथिलता आ जाती है और अन्त में बिना नशे के उसमें कर्कशता और कम्पन की मात्रा बढ़ जाती है।

मैंने देखा है कि जब नशे की बात आती है तो हमारे नवयुवक भारतीय चल चित्रों के स्वर्गीय गायक सहगल या अन्य ऐसे कलाकारों का उदाहरण पेश करते हैं जिनके जीवन में नशे का प्राधान्य रहा हो और फिर भी उनके स्वर में कोई शिथिलता या किसी प्रकार की कमी न मालूम पड़ती हो, लेकिन मेरे मित्र

ऐसे व्यक्तियों के जीवन की बहुमुखी दशा को ही देख या जान सके हैं, किन्तु वे उनकी आन्तरिक अवस्था से नितांत अनभिज्ञ रहते हैं। कदाचित वे यह नहीं समझ पाते कि शराब अथवा अन्य मादक द्रव्यों के अभाव में ऐसे कलाकारों की क्या स्थिति होती थी तथा है और इस व्यसन ने उनकी आयु पर क्या प्रभाव डाला अथवा उनकी मृत्यु किस प्रकार हुई ? जहां तक मैंने ऐसे जीवन को देखा है तो यही पाया है कि नशा धीरे-धीरे शरीर पर अपना इतना अधिकार कर लेता है कि यदि एक दिन भी न किया जाय तो स्वर का निकलना तो अलग बात रही, आदमी कहीं चल-फिर भी नहीं सकता और मृतप्राय सा हो जाता है। आधुनिक कई ऐसे कलाकारों के साथ मैं रहा हूं जिन पर कि यह बात पूर्ण रूपेण आज भी घटित होती है। ऐसे लोगों की मृत्यु भी बड़ी पीड़ा से होती है।

मोटे रूप में नशे से निम्न लिखित चार हानियां प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती हैं।

१—नशे से ताजगी और श्रोताओं को प्रफुल्लित करने वाली शक्ति नष्ट हो जाती है।

२—स्वर की शक्ति को नशा धीरे-धीरे समाप्त कर देता है।

३—स्वर यन्त्र के कोमल तन्तुओं को नशा इतना कमजोर कर देता है कि वे साधारण ठन्ड भी बर्दास्त नहीं कर सकते।

४—अधिक नशा करने से कण्ठ और स्वर में एक प्रकार की कर्कशता आजाती है जिसे कि अभ्यस्त कान शीघ्र ही पहिचान लेते हैं।

किसी भी रूप में क्यों न सही नशा प्रत्येक दशा में हानिकारक है।

—

स्वर भेद पर कण्ठ सुधारक कुछ
अनुभूत प्रयोग

स्वर-भेद ६ प्रकार का होता है; यथा वातज, पित्तज, कफज सन्निपातज, क्षयज तथा मेदज । वातज स्वर-भेद में रोगी की आवाज गधे के समान फटी हुई हो जाती है तथा उसके नेत्र मुख, मूत्र और मल काले हो जाते हैं।

पित्तज स्वर-भेद में रोगी को बोलते समय गले में क[ा]
होता है तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और मल पीले हो जाते हैं।

कफज स्वर भेद में रोगी निरंतर कफ से गले के अवरुद्ध होने के कारण धीरे-धीरे बोलता है। स्वर को लगातार बोलते समय बार-बार कफ निगलना पड़ता है तथा दिन में सूर्य रश्मियों से कफ के कट कर कम हो जाने से कुछ अधिक बोलता है।

त्रिदोषज स्वर-भेद में उपर्युक्त तीनों दोषों के लक्षण विद्यमा[न] रहते हैं। ऋषियों ने इस स्वर-भेद को असाध्य कहा है। क्षय[ज] स्वर-भेद में रोगी के बोलते समय मुख से धुंआ जैसा निकलता है अथवा शब्द नष्ट हो जाते हैं।

मेदज स्वर भेद में रोगी बहुत देर से गले के भीतर ही बोलता है जो कि अन्य व्यक्तियों की समझ में नहीं आता। गला कफ से लिप्त सा रहता है।

क्षय रोगी, वृद्ध तथा दुर्बल मनुष्य का स्वर भेद, बहुत दिनों का पुराना अथवा जन्म जात स्वर-भेद, मेदस्वी व्यक्ति का स्वर-भेद तथा त्रिदोषज स्वर-भेद असाध्य होता है।

वात जन्य स्वरभेद में नमक मिश्रित तैल का, पित्तज स्वर-भेद में शहद और घी के मिश्रण का और कफज स्वर-भेद में क्षार तथा चरपरे पदार्थों से युक्त शहद का कवल धारण करना चाहिये। अर्थात् ग्रास के रूप में मुँह में रखकर पदार्थ को धीरे-धीरे चूसना चाहिये। कवल धारण करने से गले, तालु, जिह्वा तथा दन्तमूलों में स्थित हुआ कफ निकल जाता है और स्वर तत्काल ठीक हो जाता है। वातज स्वर-भेद में घी तथा मांस रस के साथ भात खाना चाहिये और कुछ गर्म जल पीना चाहिये। पित्तज स्वर-भेद में आलस्य का त्याग करके दूध और पानी तथा घी पीना चाहिये और कफज स्वर-भेद में पीपल, पीपलामूल, काली मिर्च तथा सौंठ इन सब के चूर्ण को गौमूत्र के साथ पीना चाहिये।

× × ×

ब्राह्मी वचाऽभया वासा पिप्पली मधुसंयुता।
अस्य प्रयोगात्सप्ताहात किन्नरः सह गीयते॥

—भाव प्रकाश

भावार्थ—वच मीठी, हरड़ काबुली, अडूसे के पत्ते, छोटी पीपल सब औषधियों को समान भाग लेकर कूट छानकर शीशी में रखलें। इस चूर्ण में से डेढ़ माशे से तीन माशे तक शहद के साथ दिन में कम से कम दो बार और अधिक से अधिक चार बार प्रयोग करें। यदि इस औषधि का नियमित कुछ दिनों तक

प्रयोग किया जाये तो स्वर सम्बन्धी समस्त व्याधियों का निश्चय ही नाश होगा। आवाज मधुर और साफ हो जायेगी।

× × ×

चव्याम्लवेत सकटुभय तिंतडीक कासीसजीरक तु गाद हनै समांशैः। चूर्णं गुड़ प्रमृदितं त्रिसुगंध युक्तं वैस्वर्य पीनस कफारुचिषु प्रशस्तम्॥ —वृन्द

भावार्थ—चव्य, अम्लवेत, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, इमली, कसीस, जीरा, वंशलोचन, चित्रक, दालचीनी, तेजपात, छोटी-इलायची सब औषधियों को समान भाग लेकर, कूट छान कर चूर्ण बना लिया जाय। इस चूर्ण से दुगनी मात्रा में पुराना गुड़ लेकर डेढ़ माशे प्रमाण की गोलियां बना लेनी चाहिये। सुबह शाम एक-एक गोली मुंह में डालकर चूसनी चाहिये अथवा एक घूंट गुनगुने जल के साथ भी ले सकते हैं। इन गोलियों के प्रयोग से आवाज का बेसुरापन, कफ-खांसी, पीनस अरुचि आदि व्याधियों का निश्चय रूप से नाश होता है, यह एक उत्तम शास्त्रीय आयुर्वेदिक योग है।

× × ×

कालीमिर्च १ तोले, मुलहटी १ तोला, मिश्री २ तोले तीनों वस्तुओं का बारीक चूर्ण बनाकर किसी कांच के पात्र में रख लीजिये। इसमें से दो-दो माशे चूर्ण शहद में मिलाकर प्रातः, दोपहर तथा शाम को लेना चाहिये। इसके प्रयोग से खांसी, श्वास, स्वर-भेद तथा नजला आदि के समस्त रोग दूर होते हैं। यह योग आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक' से लिया गया है।

× × ×

वच पीपल अरु वावची, मिर्च कुलीजन पान ।
शहद मिलाकर चाटिये, कंठ कोकिला मान ॥

× × ×

कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग और वंशलोचन इन सब के चूर्ण को मधु तथा घी मिलाकर अवलेहन करने से उग्र स्वरभेद तथा जिह्वा स्तम्भ (हकलाना) दूर हो जाता है ।

× × × ×

छोटी कटेरी १०० तोले, पीपल की जड़ ५० तोले, चित्रक २५ तोले तथा दशमूल की औषधियां २५ तोले लेकर ५१२ तोले जल में पकावे । जब पकते-पकते ६४ तोले जल शेष रह जाये तो उसे वस्त्र में छानकर उसमें क्वाथ से आधी मात्रा में पुराना गुड़ डालकर अवलेह के समान पकावे । जब अवलेह तैयार हो जाय तो उसमें पीपल का चूर्ण ८ तोले, त्रिजात (दाल चीनी, छोटी इलायची, तेजपात) का चूर्ण ८ तोले, कालीमिर्च का चूर्ण १ तोला तथा शहद ४ तोले मिलादें । इसे हाजमा शक्ति के अनुसार सेवन करने से प्रतिश्याय, खांसी, श्वास तथा अन्य गले के रोग नष्ट हो जाते हैं ।

× × × ×

आम का सूखा बौर ३ तो०, सत्व मुलहटी ३ तो०, आमला ३ तो०, चनक्वाब १ तो०, छोटी इलायची के बीज १ तो०, बरियारी १ तो०, मिश्री ४ तो० इन सब का चूर्ण कर, कपड़े में छानकर उस चूर्ण को बीज निकाले हुए काले मुनक्कों में अच्छी तरह घोटना चाहिये; फिर उसकी चने के प्रमाण की गोलियाँ

बना लेनी चाहिए। इन गोलियों में से एक-एक गोली दो-दो घंटे के अन्तर से मुँह में रखने से खाँसी मिटती है, कण्ठ शुद्ध होता है और आवाज सुरीली तथा मधुर हो जाती है।

× × × ×

बेर के पत्तों की लुगदी में सैंधा नमक मिलाकर इस लुगदी को घी में तल कर खिलाने से स्वर भंग, श्वास तथा खांसी नष्ट होती है।

× × × ×

गोभी के पत्ते और डालियों को पानी में औटाकर उस क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से स्वरभंग दूर होता है।

× × × ×

भोजन के पश्चात् घी में काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पिलाने से स्वर भंग मिटता है।

× × × ×

ब्राह्मी, गोरखमुण्डी, वच, सोंठ और पीपल इनके समान भाग चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से एक सप्ताह में ही स्वर में अन्तर प्रतीत होने लगता है।

× × × ×

ब्राह्मी के १० तोले चूर्ण में बराबर का बादाम रोगन मिलाकर उसमें ढाई-ढाई तोले खीरा, खरबूजा, तरबूजा और ककड़ी के बीजों की गिरी, छोटी इलायची के बीज ५ तोला, कालीमिर्च एक तोला, इनका चूर्ण मिलाकर सुरक्षित रखलें। इसमें से ३ माशे की मात्रा प्रतिदिन गाय के दूध के साथ सेवन करने से थोड़े ही दिनों में

हृदय और मस्तिष्क की शक्ति बढ़ जाती है तथा स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है और वाणी कोमल व मधुर हो जाती है।

× × × ×

ब्राह्मी का रस एक सेर और गौ घृत एक पाव रखलें, फिर चमेली के फूल, हल्दी, कूट, निसोथ और हरड़ प्रत्येक एक-एक तोले एवं पीपल, बायविडङ्ग, सेंधा नमक, मिश्री और वच प्रत्येक तीन-तीन माशे, कुछ मोटा चूर्ण करके १६ गुने जल में मंद-मंद अग्नि पर पकावें, चतुर्थांश अर्थात् चौथाई रह जाने पर उतार लें। फिर उसमें उक्त ब्राह्मी का रस तथा गौ घृत मिलाकर मन्द अग्नि पर घृत पाक की विधि से (केवल घी की मात्रा शेष रहने पर) घृत तैयार करके किसी कांच के वर्तन में सुरक्षित रखलें। इसमें से वल के अनुसार मिश्री या दूध के साथ सेवन करने से स्वर मधुर होजाता है एवं स्मरण शक्ति बढ़ जाती है।

× × × ×

जल ब्रह्मी के पत्तों को घी में तल कर खिलाने से स्वर भंग दूर होता है।

× × × ×

अरनी के फूलों को पीसकर चूर्ण बना लें। तीन माशे चूर्ण नित्य प्रातःकाल व सायंकाल सेवन करें और उसके ऊपर गाय का दूध पीवें। इससे एक सप्ताह में स्वर भंग नष्ट हो जाता है तथा स्वर में तेजी आ जाती है।

× × × ×

लता कस्तूरी का धूम्रपान करके भी स्वर भंग ठीक कर सकते हैं।

× × × ×

स्वर भंग रोग में मुन्डी की जड़ को चवाने से अथवा मुन्डी के पत्तों को पान में रखकर खाने से शीघ्र उपकार होता है। तोता-मैना आदि पक्षियों को मुंडी के पत्तों का चूर्ण उनके भोजन में मिलाकर खिलाने से उनका स्वर अति उच्च हो जाता है।

× × × ×

सफेद गुंजा के घूंघची के पत्तों को चवाने और उसके रस को धीरे-धीरे निगलने से स्वर भंग के रोगी को बहुत लाभ पहुंचता है।

× × × ×

अजवाइन १ तोला, हल्दी १ तोला, चीता छाल १ तोला, जवाखार १ तो०, आमला १ तो० इन सब औषधियों को बारीक चूर्ण करके कपड़े में छानें, शहद और घी असमान (बराबर नहीं) के साथ १ से ३ माशे तक प्रातः तथा सायंकाल लें।

× × × ×

शुद्ध गंधक २ तोला, शुद्ध पारा २ तोला इनकी कजली बनालें फिर शुद्ध मीठा विष दो तोला, भुना सुहागा २ तोला, मरीच २ तोला, चव्य २ तोला, चित्रक छाल २ तोला इनका कपड़छन चूर्ण करके उपरोक्त कजली मिलाकर अदरक के रस के साथ खरल करके २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनावें। १ गोली जल के साथ प्रातः तथा सायंकाल लेने से स्वरभंग नष्ट होता है।

यूनानी प्रयोग—

१—आम का बौर (छाया में सुखाया हुआ) १ तोले, काली मिर्च १ तोले मिश्री २ तोले। तीनों औषधियों को कूट छानकर एक साफ शीशी में भरलें। प्रातःकाल अभ्यास करते समय थोड़ा-थोड़ा चूर्ण तीन-चार बार मुँह में डालते रहें। इसके प्रयोग से आवाज कोयल के समान मधुर होजाती है। वह आवाज जो कि ऊँचे स्वर अर्थात् तार सप्तक में काम नहीं करती, इस चूर्ण के प्रयोग से ठीक-ठीक काम करने लगती है। यह नुसखा प्राचीन समय के एक अनुभवी गायक द्वारा प्राप्त हुआ है।

२-अदरक की एक बड़ी गांठ लेकर उसे अन्दर से कुछ खाली कर लीजिये, तत्पश्चात् उसमें हींग और सेंधा नमक पीस कर भर दीजिये। फिर उस पर कपड़ा लपेट कर गुंधे हुए आटे को उसके ऊपर चढ़ा दीजिये और आग में दे दीजिये। सुर्ख होजाने के बाद उस गोले को निकाल लीजिये। उस अदरक के भुर्त्ते को थोड़ा-थोड़ा खाने से चलरामी तथा नजले से बिगड़ा हुआ गला साफ और शुद्ध हो जायेगा।

३—बनफशा, उन्नाब, खत्मी, बीदाना, कालीमिर्च, सौंफ, मुनक्का इन सब चीजों को ३-३ माशे लेकर जुशांदे के रूप में पीने से गला मधुर और सुरीला बन जाता है। जुशांदा मिश्री अथवा शहद डालकर पीना चाहिये।

४—यदि किसी कारण से आपका गला बैठ गया है तो कबाबचीनी मुंह में डालिये, ऐसा करने से आपका गला शर्तिया खुल जायेगा। कबाब चीनी एक औषधि है जो साधारणतया पंसारियों के यहां मिल जाती है।

स्वर-साधक के लिये जितना महत्व अभ्यास का है उतना ही परहेज का भी है। यदि एक ओर आप अभ्यास करते जायें और दूसरी ओर खाने-पीने और सर्दी जुकाम का परहेज न करें तो अभ्यास से कोई लाभ न होगा। अतः कण्ठ को सुरीला करने के लिये दोनों चीजें साथ—साथ चलनी चाहिये।

नुसखे किसी योग्य व्यक्ति अथवा वैद्य के निरीक्षण में ही तैयार कराने चाहिये ताकि किसी अशुद्ध या गलत चीज के समावेश का खतरा न रहे।

टान्सिल्स और स्वर

अक्सर देखा जाता है कि टान्सिल्स (तालु मूल प्रदाह) से अनेक व्यक्ति पीड़ित रहते हैं। यह रोग कई प्रकार से होजाता है। एक तो बचपन में अधिक बर्फ का सेवन करने से इसका स्थायित्व हो जाता है, दूसरे पितृजन्य रोग चले आने से भी यह बीमारी हो जाया करती है, तीसरे बाल्यावस्था की कुसंगति में पड़कर अधिक हस्तमैथुन आदि से भी टान्सिल्स पैदा हो जाते हैं और यौवनकाल में कोई भी गर्म या ठण्डी चीज साथ-साथ लेने पर यह उभर आते हैं।

टान्सिल्स से बचने के लिये लोग अनेक उपचार करते हैं और ७५ प्रतिशत व्यक्ति उनका ऑपरेशन करवा कर उनको समूल नष्ट कर देते हैं, किन्तु गायकों के लिये यह बड़ी दुविधाजनक बात हो जाती है कि टान्सिल्स का ऑपरेशन कराना ठीक है अथवा नहीं। मेरे पास ऐसी शंकाओं के अनेक पत्र आ चुके हैं। शंका यही होती है कि टान्सिल्स के ऑपरेशन से कहीं स्वर पर तो आंच नहीं आयेगी? डाक्टर लोग इस विषय में निरुत्तर होते हैं, अतः किसी गायक के लिये तो टान्सिल्स बहुत बड़ी समस्या बन जाते हैं। ऑपरेशन न कराने की दशा में टान्सिल्स समय-समय पर फूलकर कष्ट देते रहते हैं क्योंकि एक बार के फूले हुए टान्सिल्स स्वतः ही ठीक होने में कम से कम एक सप्ताह लेते हैं। इस बीच गायक अपने सङ्गीत का अभ्यास नहीं कर पाते। जहाँ-तहाँ के प्रदर्शनों को भी स्थगित कर देना पड़ता है। भाषणकर्ताओं को भी बोलने में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है

समय प्रदाह होने पर भी बहुत से व्यक्ति विशेष अपने कार्यक्रम स्थगित नहीं कर पाते, अतः टान्सिल्स का रोग निरन्तर अपना विकास करता चला जाता है।

टान्सिल्स का ऑपरेशन करवा देने के बाद तीन प्रतिशत व्यक्तियों की आवाज ज्यों की त्यों रहती है अन्यथा स्वर माधुर्य नष्ट हो जाने का भय रहता है अतः गायकों को तो आपरेशन की कल्पना तब तक छोड़ देनी चाहिये जबतक कि किसी वैज्ञानिक उपकरण के द्वारा शल्य चिकित्सा में आवाज बिगड़ जाने का खतरा न रहे।

होमियोपैथी के एक विशेषज्ञ ने तो "टान्सिल्स और उनकी रक्षा" नामक पुस्तक लिखकर बल देकर यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि टान्सिल्स का प्राकृतिक उपचार ही श्रेयस्कर है। उनका कथन है कि किसी भी रोग को बाह्य दृष्टि से तुरन्त ही शल्य क्रिया अथवा अन्य चिकित्सा द्वारा नष्ट कर देने की सोचना मूर्खता पूर्ण बात है। प्रत्येक रोग को अन्दर से धीरे-धीरे समूल नष्ट कर देना ही जीवन के लिये लाभकारी होता है।

देखा जाय तो उपरोक्त कथन में सफलता के अल्पाणु स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। एक छोटी सी फुंसी या फोड़े को ही ले लीजिये। मान लीजिये आज आपके शरीर पर कोई फुंसी उठती है और आप दूसरे ही दिन उसे किसी डाक्टरी दवा द्वारा बैठाने में सफल हो जाते हैं तो यह न समझिये कि वह समूल नष्ट होगई, बल्कि उस फुंसी से निकलने वाला मवाद जो कि आपने बाह्य रूप से ढक दिया है, शरीर के अन्य किसी

हिस्से पर निकल कर अपना कार्य पूरा कर लेगा और उसकी इस क्रिया से आप अनभिज्ञ रहेंगे। इसी प्रकार टॉन्सिल्स के एक दिन के आपरेशन द्वारा भी उसके समूल नष्ट होने की कल्पना भ्रमयुक्त है क्यों कि टान्सिल्स की गांठों में से नियम और समयानुसार बेकार का मवाद निकलता रहता है। अनेक डाक्टर तो टान्सिल्स रहने देने के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि टान्सिल्स वाले व्यक्ति को कैन्सर तथा इसी प्रकार की अन्य भयंकर बीमारियों का सामना नहीं करना पड़ता, किसी विशेष परिस्थिति में हो जायें तो दूसरी बात है।

मेरी दृष्टि से उपरोक्त तथ्यों में प्रामाणिकता दृष्टिगोचर होती भी है और नहीं भी। किन्तु टान्सिल्स के विलम्बित गति के प्राकृतिक उपचार को ही मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ और इसी सम्बन्ध के कुछ प्रयोगों को भी यहां लिख देने की आवश्यकता समझता हूँ। प्रयोगों को धैर्यता से अपनाया गया तो मुझे विश्वास है कि सुरीले समाज को इसमें आश्चर्यजनक सफलता मिलेगी।

१—यदि आपको अक्सर टान्सिल्स से पीड़ित होना पड़ता है, तो खाना खाने के पश्चात् दोनों समय नमक के गरारे करिए। इसमें सफलता आप एक वर्ष पश्चात् देखेंगे।

२—दही, खट्टी चीजें तथा तैल का प्रयोग भूल कर भी न करें।

३—घी में तली हुई चीजें जहां तक हो न खाइये और गर्म तथा ठण्डी चीजें एक साथ कभी न लीजिये।

४—जिन लोगों को टान्सिल्स कभी-कभी होते हैं, उनको चाहिए किवर्क का प्रयोग यदाकदा ही परिस्थितिवश करें। अक्सर देखा

जाता है कि बर्फ का पानी अथवा शरबत आदि पीने के पश्चात् लोग ग्लास में बचे हुए बर्फ के टुकड़े व्यर्थ फेंक देने के लालच में मुँह में रखकर चूसने लग जाते हैं, ऐसा करने से टान्सिल्स को बहुत बल मिलता है।

५—टान्सिल्स हो जाने की दशा में अथवा उनका प्रदाह प्रारंभ होने के लक्षणों में टान्सिल्स के समाप्त होजाने तक नित्य प्रति प्रातःकाल कुल्ला करने के पश्चात् अँगूठे से काग को ऊपर की ओर थोड़ा दबा देना चाहिए।

६—गूलर की राख को दर्द की अवस्था में सूर्यास्त के समय गले पर मल लेना चाहिए।

टान्सिल्स व अन्य दोषों पर होमियोपैथिक प्रयोग—

चिकित्सा का प्राकृतिक विधान होमियोपैथी का आविष्कार १९ वीं शताब्दि के आरम्भ में जर्मनी के डाक्टर सैमुयेल हैनिमैन ने किया। इस पद्धति का सिद्धान्त है, जीवन शक्ति को प्रबल बनाना ताकि शरीर में होने वाला रोग सर न उठा सके। जड़-वादी इसमें कम विश्वास रखते हैं क्योंकि इसकी औषधियां सूक्ष्म शक्ति सम्पन्न होती हैं।

यह चिकित्सा लाक्षणिक होती है, विशेषतः मानसिक लक्षणों पर आधारित। इसलिये जिस औषधि से रोगी के लक्षण मिलते हों, वही औषधि देनी चाहिए। औषधि की क्रिया औषधि के परिमाण पर नहीं अपितु उसकी होमियो शक्ति पर

साधारणतः पूर्ण वयस्क को १ बूंद, ६ से १२ वर्ष तक के लिये इसका आधा और बच्चों को इसका चौथाई भाग, इस प्रकार खुराक बनानी चाहिए ! औषधि की खुराक वाष्पयन्त्र द्वारा खिंचे हुए जल (Distled Water) में देनी चाहिए।

औषधियां ३०, २००, १०००, १००००, ५०००० तथा लाख शक्ति की होती हैं। नए रोगी, बच्चे को ३० व वयस्क के लिये २०० शक्ति की औषधि प्रयोग में लानी चाहिए। पुराने रोगों में, ठीक-ठीक लक्षण मिल जाने पर ही अधिक शक्ति वाली औषधि प्रातःकाल के समय प्रयोग करनी चाहिए। औषधि पानी में पी ली जाये अथवा गोली या पाउडर में चूस ली जाय ताकि लार (स्लाइवा) में घुल कर औषधि की पूर्ण क्रिया होने लगे।

होमियो पैथिक औषधि लेने से एक घन्टे पूर्व और एक घन्टे पश्चात् निराहार रहना चाहिए। अधिक गन्धयुक्त तथा तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये।

सर्दी लगकर टान्सिल्स का पर्दा सूजकर तालू में बेहद दर्द हो, दाहिनी ओर का तालु मूल बहुत फूल जाय, थूकने या घूँट लेने में अधिक दर्द का होना, टान्सिल्स पक कर पीव निकलना तथा गले में घाव हो जाना—इन सब लक्षणों में "बैराइटा" बहुत फ़ायदा करती है। "लैकेसिस" और "लाइकोपोडियम" भी इसके लिये लाभदायक हैं। जिन लोगों को बार-बार टान्सिल होजाते हैं उनको 'फाइटो लैक' लेनी चाहिए।

× × × ×

पके हुए टान्सिल्स में "कैल्केरिया सल्फ" का प्रयोग करना चाहिए। (यह ऐलोपैथिक दवा है)

× × × ×

टान्सिल्स फूलने या सूजने पर कोई सल्फा ड्रग का प्रयोग कर सकते हैं अथवा पैन्सलीन के इन्जैक्शन्स लगवाने चाहिये। (ऐलोपैथिक)

× × ×

जिन व्यक्तियों का गला सर्दी से तथा गाते-गाते बैठ जाय उनको "आर्जेन्टिम नाइट्रिकम" का प्रयोग करना चाहिये।

× × ×

जीभ के लकवा से स्वर बैठ जाने पर तथा कंठ सुरीला करने के लिये 'कास्टिकम' प्रयोग में लाना चाहिये। इसमें 'एन्टिमोनियम क्रूडम' 'आर्जेन्टम मान्टेना', और 'एकोनाइट' का प्रयोग भी कर सकते हैं।

× × ×

जिनकी आवाज अधिक मन्द हो उनको 'कारबोएनिमेलिस' का प्रयोग करना चाहिये।

× × ×

भाषण कर्त्ता, गायक व नीलाम बोलने वालों के गला बैठ जाने पर लाख शक्ति वाला 'एरमट्राइफाइलम' लाभ करता है।

× × ×

हकला कर बोलने पर 'बैलेडोना' और तुतलाने पर 'स्ट्रैमोनियम' व 'हायोसियामस' का प्रयोग भी कर सकते हैं।

× × ×

बुड्ढे व्यक्तियों के स्वरयन्त्र सम्बन्धी पुराने रोग पर 'एल्यूमेन' का प्रयोग लाभदायक सिद्ध होता है।

× × ×

गायन अथवा भाषण के लिये मन्च पर जाते समय अक्सर नवोदित कलाकारों की हृदयगति चलने लगती है। हाथ, पैर

लगती है, किसी भी प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले पुरुष से बातचीत करने को जी नहीं चाहता। अधिक कमजोर व्यक्तियों को ऐसे समय दस्त भी लग आते हैं, इस अवस्था में 'जेल सिमियम' का प्रयोग करना चाहिये। धारा प्रवाहिक बोलते रहने पर बीच में गला अवरुद्ध सा हो जाने के कारण विघ्न पड़ता है, उसी प्रकार गायन में भी यही हालत होती है—इन लक्षणों के लिये भी 'जेलसिमियम' को याद रखिये। वैसे इसमें 'सेनेगा' भी बहुत लाभदायक है।

× × ×

गायन में बैठकर अथवा खड़े होकर बहुत से व्यक्ति पैर हिलाया करते हैं जो कि देखने में बहुत ही बुरा लगता है, इसको मुद्रा दोष कहते हैं। आदत पड़ जाने के कारण जो व्यक्ति इस दोष को दूर नहीं कर पाते उन्हें 'जिकम' दवा का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

× × ×

(एलोपैथिक प्रयोग) ज्यादा बोलने या गाने से अथवा जुकाम सर्दी से गला बैठ जाय तो 'टिन्चर बैंजो केन' 'इक्यूलिप्टस आयल' तथा मैनफल (पीपरमेंट) ये चीजें पानी में डालकर उसकी भाप गले में अन्दर लेने से आराम होता है, साथ ही ऊपर से सिकाई भी करनी चाहिये। गले में लगाने के लिये 'मैंडिल्स प्रोटपेन्ट', 'फैराइग्लिसरीन', तथा 'टैनिक ऐसिड ग्लिसरीन' का प्रयोग करना चाहिये।

× × ×

नाक में गोश्त बढ़ जाने से भी स्वर में बहुत अन्तर पड़ता है अतः उसका उपचार शीघ्र ही किसी योग्य डाक्टर के निर्देशन में करा देना श्रेयस्कर रहता है।

यदि आपका स्वर ठीक है ?

यदि आपको प्रकृति की ओर से पर्याप्त स्वर माधुर्य प्राप्त हुआ है तो सम्भव है आप इस विषय से उदासीन ही बने रहें, और फिर आपको इस प्रकार के साहित्य एवं स्वर माधुर्य प्राप्त करने के उपादानों अथवा साधनों को ढूंढने की आवश्यकता भी महसूस न हो, क्यों कि आपको तो अपनी प्राकृतिक देन पर पूरा भरोसा है। इस पुस्तक में दिये हुए अभ्यासों को भी आप सम्भवतः उपेक्षित दृष्टि से देखेंगे।

यहां सर्व प्रथम अभ्यास अथवा रियाज की महत्ता की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया जावे तो सम्भव है आपकी उपर्युक्त उदासीनता आंशिक रूप में दूर हो जाय। क्यों कि ईश्वरीय देन प्राप्त व्यक्तियों को भी उसकी रक्षार्थ जीवन को एक व्यवस्थित सांचे में ढालकर चलना पड़ता है; ऐसे सांचे में जो प्रतिभा को उसके चर्मोत्कर्ष तक पहुंचाने में सहायक होता है। मलिन और दूषित वातावरण में पली हुई प्रतिभा भी यद्यपि नष्ट नहीं होती किन्तु उसका विकास एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जिसके द्वारा कला और संस्कृति निश्चयात्मक रूप से विनाशकारी घटनाओं का शिकार बन जाती हैं। इसके विपरीत यदि प्रतिभा का पोषण और परिवर्धन उज्वल तथा दोष रहित वातावरण में होता है तो उसका उत्कर्ष समाज के प्रत्येक अङ्ग के लिये कल्याण-कारी सिद्ध होता है।

उपरोक्त परिणामों को दृष्टगत करते हुए आपको अपने ईश्वर प्रदत्त स्वर माधुर्य की सुरक्षा के निमित्त बहुत विवेकपूर्ण बाद

अपनानी है इसके लिये आपको एक सुव्यवस्थित कार्य-क्रम के अनुसार वढ़ना होगा ।

स्वभाव—

सर्व प्रथम आपको अपने स्वभाव को देखना होगा । आप क्रोधी प्रकृति के तो नहीं हैं जो जरा-जरा सी बातों पर अपना संतुलन खो बैठते हैं, किसी अन्य कलाकार की प्रतिभा से आपको जलन तो नहीं होती, भावावेष में आप तुरन्त तो नहीं वह जाते, बुरा बर्ताव, घृणा, कठोरता, परेशानी और उद्वेग के दौर्वल्य से तो पीड़ित नहीं हैं···· आदि । इन सब पर विचार करके देखिये । यदि अपने को 'हां' के उत्तर में पायें तो इन कमजोरियों को निकाल कर अपने स्वभाव को निर्मल बनाने का प्रयत्न करते रहिये ।

नींद—

बहुत से लोगों का स्वभाव ऐसा होता है कि वे अनेक महत्व-पूर्ण दैनिक कार्यों में संलग्न रहने के कारण पूरी नींद भी नहीं ले पाते जोकि स्वर माधुर्य को अक्षुण्य बनाये रखने के लिये नितांत आवश्यक है । कम नींद लेना और उसका आभास न होना गायकों के लिये उतना ही हानिकारक है जितना कि टान्सिल्स के रोगियों को बर्फ का जल । बहुत से लोग यह जानते हुए भी कि उन्हें नींद पूरी लेनी चाहिये कम सो पाते हैं, इसके कई कारण होते हैं । मानसिक व्याधियां, भविष्य की चिन्ता, गृह कलह एवं अधिक जिम्मेदारियों का बोझ आदि । ऐसी दशा में निम्न लिखित प्राकृतिक उपचार बहुत सहायक सिद्ध होंगे:—

१—दूध में जायफल और कपूर मिलाकर मस्तक पर मलें ।

२—जायफल व जाय पत्र डालकर दूध पियें ।

३—प्याज कूटकर माथे पर बांधें और तलुवे पर घी की मालिश करावें।

नींद के लिये जो व्यक्ति नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं वह अपना ही नहीं बल्कि अपनी भावी पीढ़ी का पतन करने में भी सहायक होते हैं क्यों कि मादक वस्तुओं का प्रभाव ६५ प्रतिशत परम्परागत ही पाया जाता है।

साथ-संगत—

जीवन एक खेल का मैदान है। जिस प्रकार एक खिलाड़ी अपनी श्रेष्ठता दिखाने के हेतु अपने से कमजोर खिलाड़ियों में खेलना ही अधिक पसंद करता है और इस प्रकार उसका कभी विकास नहीं हो पाता; ठीक उसी तरह एक कलाकार अपने से कम योग्य अथवा समान व्यक्तियों की संगत में रहकर हर समय सम्मान का ही पात्र बना रहना चाहता है। इसके विपरीत वह अपने से ऊँचे गायकों में बैठना पसंद नहीं करता क्यों कि वहां उसे उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है, किसी भी गलती पर ताना मिलता है और कभी-कभी डांट फटकार भी; किन्तु वास्तव में देखा जाय तो यही बातें, जिनके द्वारा वह अपना अपमान सहता है उसे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं।

रियाज—

अमेरिका के प्रसिद्ध गायक 'मैविसग लारी' से एक भव्य नाट्यशाला में मेरी बड़ी देर तक बातचीत हुई थी। उन्होंने मुझे बताया था कि "मेरे पास बड़े-बड़े धनाढ्यों के लड़के बड़ी-बड़ी रक़मों के चैक लेकर आते हैं और मुझसे प्रार्थना करते हैं कि किसी भी प्रकार हमें प्रथम गायकों की श्रेणी में सम्मिलित कर

गवा दीजिये ! मैं कह देता था अच्छी बात है, आप यहां नित्य प्रति अभ्यास करने आइये। जब वे चले जाते थे तो मैं बड़े जोर से हँसता था क्योंकि मैं देखता था कि ईश्वर प्रदत्त मिठास से ओतप्रोत स्वर सम्पन्न होते हुए, रूपवान तथा अतुल सम्पत्ति के स्वामी होते हुए भी वे मेरे पास ऐसी दयनीय दशा में आते हैं। मैं जानता था कि इसका एक मात्र कारण उनका नियमित अभ्यास न करना ही है। दूसरे दिन से नये-नये सूट पहनकर मुख को क्रीम पाउडर और अन्य उपक्रमों से सज्जित कर अपनी-अपनी कारों में वे मेरे यहां आ तो गये, लेकिन कुछ ही देर पश्चात् वहां हॉलीवुड की विख्यात नर्तकी एवं सुन्दरी रीता हैवर्थ के अङ्ग सौष्ठव की चर्चा चलने लगी। मैं ऐसे दोस्त शिष्यों से पहले से ही परिचित था अतः ६८ वर्ष की अवस्था होते हुए भी मैं उनमें मिलकर उन जैसा ही युवक बन जाता और सोचता कि यदि प्रत्येक व्यक्ति रियाज की महत्ता समझ जाये तो संसार कलाकारों से भर जाय। इसीलिये तो ईश्वर प्रदत्त स्वरमाधुर्य होते हुए भी लाखों में से एक कलाकार बन पाता है।" इस दृष्टांत से आप भली भांति समझ जायेंगे कि स्वर सौंदर्य होते हुए भी उसकी रक्षार्थ हमें अपने दैनिक अभ्यास की कितनी आवश्यकता है।

भारतीय अमर गायक तानसेन से किसी ने पूछा था कि 'आप जैसे सिद्ध गायक को तो रोजाना रियाज करने की जरूरत नहीं पड़ती होगी'।

तानसेन ने कहा—'यदि मैं रियाज में एक दिन की नागा करता हूँ तो मैं खुद उसका अनुभव करने लगता हूँ। दो दिन की नागा करने पर महाबली (अकबर) और मेरे दोस्त अनुभव करने लगते हैं और तीन दिन की नागा पर तमाम श्रोता उसका अनुभव करने लगते हैं।'

तानसेन की यह बात कहां तक सही है, इसका अनुमान आज का कोई भी सिद्ध कलाकार आसानी से लगा सकता है।

जनवरी ५५ में न्यूयार्क के विख्यात नृत्य गृह "पियन्म" में एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गीत समारोह हुआ था। यह समारोह विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय लोक नृत्य प्रतियोगिता के रूप में हुआ था, जिसमें कि कुमारी गैरोल को सर्व श्रेष्ठता के दो पुरस्कार प्राप्त हुए; पहला लोक नृत्य में और दूसरा स्वर सम्पन्नता में। प्रथम पुरस्कार एक लाख रुपये का और दूसरा ५० हजार रुपये का था। आपने दोनों ही पुरस्कार उसी समय सङ्गीत विकास के लिये जर्मनी की सुप्रसिद्ध संस्था 'मिग्वीच' को प्रदान कर दिये। इस अवसर पर कुमारी 'गैरोल' को 'संगीत का चांद' उपाधि से भी दोबारा विभूषित किया गया। इस शुभ अवसर पर एक पत्रकार ने 'ऐरोल' से पूछा कि आपका स्वर इतना मीठा कैसे है? आपने विनोद में उत्तर दिया कि "जनाब मैं दिन भर शक्कर खाया करती हूँ और हँस पड़ीं। बाद में आपने कहा कि जब से मैंने होश संभाला है, मैंने अपने स्वर को ऐसा ही पाया, मैंने इसकी अभिवृद्धि के लिये कोई विशेष प्रयास नहीं किया। ईश्वर की विशेष कृपा ही समझिये कि उसने मुझे इस अलभ्य उपहार से अलंकृत किया। लेकिन हां, इसकी सुरक्षा के लिये मैं अवश्य ध्यान रखती हूँ। ईश्वर का काम तो देना है किन्तु दी हुई चीज को संभाल कर रखना तो हमारा ही कर्तव्य है। मैं तो एक बात में विश्वास करती हूँ कि स्वर की मधुरता स्वर साधना पर निर्भर करती है। स्वर को कभी प्रमादी न बनने दीजिये, यह स्वर के लिये जहर का कार्य करता है। स्वर को साधना द्वारा नियन्त्रित रखिये ताकि उसकी मधुरता में कहीं भी दाग न पड़े।"

कुमारी ऐरोल का यह स्पष्टीकरण ईश्वर प्रदत्त स्वर सम्राटों के लिये मार्ग प्रशस्त करेगा, इसमें सन्देह नहीं।

सप्तकों की ओर—

हमारे गायक अक्सर ढाई-तीन सप्तकों में ही अपने गले का घुमा-फिरा कर यह समझ बैठते हैं कि स्वर की विशिष्ट सीमा पर विजय प्राप्त करली। किन्तु पाठक यह सुनकर आश्चर्य चकित हो जायेंगे कि दक्षिणी अमेरिका की आधुनिक गायिका 'ईमा सुमैक' जो कि पेरू के प्राचीन राजघराने की वंशधर हैं, बड़ी सुगमता से पांच सप्तकों में अपने गले को घुमा-फिरा सकती हैं! ईमा का कहना है कि बचपन में सुबह उठकर वे जंगल में घूमने निकल पड़तीं और दिन भर पक्षियों के कूंजन का अनुकरण किया करती थीं। इस प्रकार उन्होंने अपने स्वर को ऐसा साध लिया कि वह पाँच सप्तकों को भी पार करने लगीं। यह गुण आपको ईश्वर से प्राप्त होना असम्भव है, इसके लिये तो आपको कठोर परिश्रम ही करना पड़ेगा।

मनोवैज्ञानिक साधन

यह बतलाया जा चुका है कि हमारे स्वभाव का हमारे स्वर पर बड़ा असर पड़ता है। यहाँ हम उन मनोवैज्ञानिक उपायों और साधनों पर विचार करेंगे जो स्वर को सुरीला बनाने में सहायक हो सकते हैं।

यह हम बतला चुके हैं कि अच्छा गायक या वक्ता बनने के लिए हमें अपने स्नायुओं पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त करना चाहिए। ऐसा करने के लिए इच्छा शक्ति का प्रबल होना अनिवार्य है। स्वर साधना स्नायुत्व दुर्बलता को दूर करने का एक साधन है मनोविज्ञान दूसरा। आज के युग में मनोविज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि उसके द्वारा अनेक शारीरिक रोगों का इलाज भी होने लगा है। इङ्गलैंड के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने एक बार कई रोगों के रोगियों पर अपने अस्पताल में मनोवैज्ञानिक परीक्षण किये। डाक्टर नित्य प्रति आकर रोगियों का तापमान लेता था और हमेशा रोगियों को तापमान की गलत खबर देता था। इसी प्रकार नित्य-प्रति वह रोगियों को विभिन्न रङ्ग और स्वादों का सादा पानी दवा के नाम पर पिलाने लगा। रोगी को देखते ही वह कहता "आज तो तुम्हारे चेहरे पर रौनक है······बुखार भी तुम्हारा कम हो गया है। अब तुम अच्छे हो रहे हो।"

उसके इस परीक्षण का परिणाम यह हुआ कि ४०% प्रतिशत रोगी तो बिना किसी औषधि के ही अच्छे हो गये। केवल उन रोगियों को औषधि देने की आवश्यकता पड़ी जिनका रोग बहुत स्पष्ट या बढ़ा हुआ था।

आज तो अनेक ऐसे अस्पताल हैं जहाँ मनोवैज्ञानिक चिकित्सा होती है। हम भी यदि चाहें तो मनोविज्ञान की मदद लेकर

र को बहुत हद तक सुरीला बना सकते हैं। यहाँ कुछ प्रयोग
दिये जा रहे हैं।

(१) आँखें मूँद कर एकान्त में गाना प्रारम्भ कीजिये। जब
आपका समस्त ध्यान अपने स्वर पर केन्द्रित हो जाय तो गाना
बन्द कर दीजिये और कल्पना कीजिये कि आप अब भी अपना
स्वर सुन रहे हैं, आपका गायन उसी प्रकार जारी है। मधुर से
मधुर स्वर जो आपने सुना हो उसकी कल्पना कीजिये और उसे
ही अपना स्वर मानिये।

(२) फिर यकायक कल्पना के गीत को स्वर में उठा लाइये
और गाने लगिये। गाते-गाते फिर चुप होकर कल्पना में
अपनी आवाज (जैसा आप उसे बनाना चाहते हैं) सुनिये।

रोज कम से कम १५, २० मिनट तक इस अभ्यास को
कीजिये और अपने को विश्वास दिलाते रहिये कि आपकी
आवाज मधुर होती जा रही है और एक दिन आपकी कल्पना
का स्वर सचमुच आपका स्वर हो जायेगा। अपने में आत्म-
विश्वास पैदा करिये और निरन्तर अपने से कहते रहिये कि आप
भी अपने स्वर में जादू पैदा कर सकते हैं, आपका स्वर भी
चमत्कार पैदा कर सकता है आदि-आदि।

इस आत्म विश्वास को पैदा करने के लिये साधक का चरित्र
दृढ़ होना अपेक्षित है। अत्यधिक भोग-विलास करने वाले
व्यक्तियों का अपने स्वर से अधिकार जाता रहता है और उनमें
आत्म विश्वास की कमी रहती है।

चरित्र से हमारा तात्पर्य यह नहीं कि स्वर साधक को कट्टर
साधु या सन्यासी बन जाना चाहिये। किन्तु हमारा तात्पर्य
यही है कि उसे अपने चरित्र पर अधिकार होना चाहिये।

स्वर रक्षा के बाद

स्वर को सुरीला बना लेने के बाद उसका ठीक-ठीक प्रयोग करने तथा अभ्यास के दौरान में उत्पन्न हो जाने वाले अवगुणों से गायकों को बचने के लिए यहां कुछ सुझाव दिये जाते हैं। स्वर का सुरीला हो जाना ही काफी नहीं है, उसके साथ-साथ नये गायक को जिस चीज का ध्यान रखना चाहिए वह है प्रस्तुतीकरण (Presentation) का सौंदर्य। यदि प्रारम्भ ही से इसकी ओर ध्यान नहीं रक्खा जायेगा तो कई दोष उत्पन्न होकर गायन के सौन्दर्य को बहुत कुछ नष्ट कर देंगे। हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने विस्तार में गायकों के गुणावगुणों का वर्णन किया है। उन नियमों का पालन करते हुए यदि कोई गायक प्रदर्शन करे तो उसके प्रदर्शन में त्रुटियां नहीं होंगी।

(१) सदैव खुले हुए गले से गाना चाहिए। प्रारम्भ ही से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गले को दबाकर गाने की आदत न पड़ जाय।

(२) गाते समय चित्त को एकाग्र रखना चाहिए।

(३) श्रोताओं को ऐसा प्रतीत न हो कि गाने में बड़ा परिश्रम पड़ रहा है।

(४) गाते समय हाथ पैर फेंकना, मुँह बिचका कर अथवा भद्दे ढङ्ग से दाँत दिखला कर नहीं गाना चाहिए। ऐसा ऊटपटांग हावभाव दिखाने से महफिल में हास्यरस का वातावरण उपस्थित हो जाता है और गाने का सारा सौन्दर्य जाता रहता है। यदि प्रारम्भ ही से आईने को सामने रख कर गाने का अभ्यास किया जाय तो यह दोष नहीं आने पायेंगे।

(५) गाते समय गीत और राग के ही अनुरूप भाव चेहरे पर आने चाहिए।

(६) गाना प्रारम्भ करते समय आंखें मूँद कर चेहरे पर सौम्य भाव धारण किये रहना चाहिए।

(७) गाते समय मुँह और गले की नसें नहीं फूलनी चाहिए और न चेहरा तमतमा उठना चाहिए।

(८) नाक से आवाज नहीं निकलनी चाहिए और न दाँत-पीसकर ही गाना चाहिए।

(९) स्वर के बहाव में एक सी गति होनी चाहिए।

(१०) स्वर में दरारें नहीं पड़नी चाहिए और न गाने के बीच में सांस ही उखड़नी चाहिए।

(११) स्वर को उतना ही चढ़ाना चाहिए जहां तक उस पर अधिकार रक्खा जा सके। साथ ही स्वर का उतार-चढ़ाव स्वाभाविक ढंग से होना चाहिए। उसमें कृत्रिमता नहीं आनी चाहिए।

(१२) स्वर को गीत के भावों के अनुकूल ही प्रवाहित होना चाहिए।

(१३) गाते समय आवाज में अनावश्यक कम्पन नहीं आना चाहिए, तार समक पर स्वर सधा हुआ रहना चाहिए।

(१४) स्वर के उठाव और गिरावट पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

कितने ही उस्ताद अनुभव न होने के कारण अपने शिष्यों को जोर से गाने के लिये बाध्य करते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि गायक का स्वर दिन पर दिन खराब होता जाता है और अन्त में एक दिन मारा ही जाता है। वास्तव में अशुद्ध स्वर से जोर के साथ जबरदस्ती गाना एक बहुत ही भयंकर गलती है।

श्रोसीन निवासी 'जोनी एदम हीलर' सर्वदा पक्षी की तरह गाना पसंद करता था। वह अपने समय के गायक कलाकारों में प्रथम श्रेणी का प्रमुख कलाकार था "अच्छा गाना किस प्रकार सिखाना चाहिए" नाम की एक पुस्तक में, जोकि उसने सन् १७७४ ई. में प्रकाशित की थी, लिखा है कि "गाना सीखते समय स्वभावतः स्वर पर दबाव नहीं डालना चाहिये। प्राकृतिक लाभ प्राप्त करने के लिए हमें बड़े भारी संयम और धैर्य से शनैः शनैः अभ्यास करना चाहिये और इसी प्रकार अशुद्ध स्वर में सुधार किया जा सकता है। स्वर का विस्तार एक दिन में नहीं, बल्कि शनैः शनैः बढ़ाया जा सकता है। आरम्भ में हमें सीमित विस्तार से ही गाना चाहिये, ताकि हम स्वरों को सुगमता से शुद्धता के साथ ठीक-ठीक व सही-सही लगा सकें, चाहे वे थोड़े ही क्यों न हों। प्रति सप्ताह अथवा प्रति मास हम एक स्वर, तार सप्तक और एक स्वर, मन्द्र सप्तक में इस विश्वास के साथ बढ़ाते रहें कि वर्ष के अन्तर्गत आवश्यकता से अधिक हम सफलता प्राप्त कर लेंगे।"

बहुत से लोग बिना किसी लक्ष्य के एक साथ लगातार कई स्वरों को लगा जाते हैं। जबकि अन्य स्वरों को बदलते समय वे अपनी जिह्वा, मुंह और सिर को भी स्थिर नहीं रख पाते। स्वरसाधना के समय हमारे मुख, जिह्वा और जबड़े की आकृतियों में कोई गति नहीं आनी चाहिये।

स्वर का अभ्यास करते समय हमको श्वास लेने का बहुतायत से प्रयोग करना चाहिये। गायक को गाते समय बिल्कुल निःश्वास नहीं हो जाना चाहिये, बल्कि अन्तिम स्वर तक कुछ न कुछ श्वास अवश्य एकत्रित रखनी चाहिए। दूसरे शब्दों में श्वास

की शक्ति प्रस्तुत चरण या तान की पूर्व स्थिति तक रहनी चाहिये। साधारणतया स्वर को उत्पन्न करना चाहिए न कि उसे दवाना।

स्वर ही सङ्गीत—जीवन का साधन और सामग्री है। मानवीय भेद के समान, इसके भी कितने ही भेद हैं। गायक को प्रत्येक भाव प्रगट करने के लिये और भावों के आवश्यक गुणों को प्रदर्शित करने के लिये अपने स्वर के साथ उसी प्रकार कार्य करना चाहिये, जिस प्रकार एक रसोइया अपने आटे के साथ करता है।

स्वर उत्पन्न करना प्रधानतया मुख एवं अधरों की बनावट और जीभ की स्थिति पर भी निर्भर है। यदि मुँह ठीक प्रकार नहीं खोला जाय और अधर दांतों पर रहें तो आवाज बाहर न आकर मुँह में ही रह जाती है। इसी प्रकार सिर को आगे-पीछे करने में अथवा जबड़े को बन्द रखने में स्वर ही नहीं विकृत हो जाता, वरन उसका लोच भी मारा जाता है, क्योंकि लय को जो स्वतंत्र गति होती है, वह मारी जाती है और बिगड़ जाती है। मुँह की प्राकृतिक अभिव्यक्ति होठों की बनावट पर ही निर्भर है।

सन् १८४५ के प्रमुख पाश्चात्य सङ्गीतकार 'मेसीन' ने अपनी प्रकाशित पुस्तक "सङ्गीत का इतिहास" में लिखा है कि हमें मुख्य रूप से यह ध्यान रखना चाहिये कि हम कैसा गाते हैं न कि इस पर कि हम कितना गाते हैं ? वर्ष भर में ही प्रमुख गायक बनने की अभिलाषा हमें कभी नहीं करनी चाहिये। ३-४ वर्ष का समय एक शिल्पी बनने में पर्याप्त समझा जाता है तो क्या कलाकार से हम यही आशा करें कि वह एक महीने में ही दक्ष

हो जायगा। यह असंभव है! गला दबाकर नहीं गाना चाहिये। तथा अत्यन्त कर्कश या खाँसी आ जाय, इतने जोर से भी आवाज न निकालनी चाहिए। दबी हुई आवाज से गाकर चाहे कितना ही परिश्रम क्यों न किया जाय, सफलता नहीं मिलेगी। इसी प्रकार बहुत जोर से आवाज निकाली जाय तो वह कर्कश तथा भारी हो जायगी। हमेशा आवाज खुले 'आ' कार में निकालनी चाहिए, 'अँ' ऐसी रेंकने जैसी या 'ओं' ऐसी बहुत गोल आवाज निकालना ये दोनों ही दोष पूर्ण हैं। 'आ' कार में आवाज निकालने का एक बार अभ्यास होजाय तो फिर 'इ' कार 'उ' कार 'ओ' कार में भी अच्छे स्वर आने लगेंगे किन्तु इनका प्रयोग गायन में बहुत कम होता है।

आवाज में वजन, स्थिरता लाने के लिये तथा श्वास नियंत्रण के लिये आरम्भ में ही सावकाश (मन्द्र लय में) योग्य स्वरों पर अच्छी तरह ठहरते हुए गाना आवश्यक है। आरम्भ में ही जल्दी-जल्दी गाने से, स्वर अपने स्थानों पर न लगेंगे और गाने में गम्भीरता भी नहीं रहेगी।

आरम्भ में ही तान लगाने की जल्दी नहीं करनी चाहिये। जब आवाज स्थिर हो जाय तो तान शुरू करनी चाहिये। तान शुद्ध 'आ' कार में लेनी चाहिये। तथा उसकी गति क्रमशः धीरे-धीरे सावधानी से स्वर स्थान की ओर बढ़ायी जानी चाहिये। कभी-कभी 'य-य-य' ऐसी जबड़ों द्वारा तानें बड़े-बड़े गायक लेते पाये जाते हैं। इस प्रकार की तानें कुछ पुराने उस्तादों ने जान बूझकर, अपनी आवाज प्रतिकूल होते हुए भी परिश्रम द्वारा सिद्ध की थीं। उनका यह ढंग उनकी शिष्य परम्परा में भी चलता गया, तथा अब यह तानें रूढ़ हो गई हैं। किन्तु शुद्ध 'आ' कार की तान

ली जाय तो जबड़े की तान की फिर कोई ख्वास जरूरत नहीं होती। उसका उपयोग किसी जोरदार गमक की तान में कभी-कभी विशेष रूप से हो सकेगा। तान का रियाज़ करते समय स्वरों को कभी धक्का नहीं देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से गला भारी होकर बिगड़ जायगा तथा जलद तान फिर नहीं निकलेगी। स्पष्ट आवाज में 'आ' कार द्वारा सहज ढङ्ग से जितनी गति में तान साफ़ और सुरीली निकल सके, उतनी ही गति में उसे गाना चाहिये।

तान को सुन्दर बनाने के लिए छोटे-छोटे स्वर-समुदायों को सरल ढंग से उलट-पलट कर आरोह-अवरोह करते हुए तथा उनकी संगति करके तान लेनी चाहिये। सरल व लम्बी आरोह-अवरोह की तानें भी ऐसे ही अभ्यास से सध सकेंगी।

जिस प्रकार जुलाहा पट्टुए से धागे को खींचता है, उसी प्रकार गायक को अपना स्वर खींचना चाहिए। स्वर-साधन में जबर-दस्ती से काम न लेना चाहिए। इस नियम की अवहेलना गायक को उसके गहन अध्ययन और अभ्यास के पश्चात् भी मधुर स्वर के विकास से सदैव के लिए वंचित कर देती है। स्वास का आरोहण-अवरोहण शनैः शनैः अधिकार पूर्वक होना चाहिए न कि एकदम शीघ्र। साधक का उद्देश्य आत्मा को स्पर्श करने का होना चाहिए। जो गायक स्वर-साधना पूर्ण रूप से जानता है, वही श्रोताओं की आत्मा को स्पर्श कर सकता है और उसे हिला सकता है।

गायक को पद्य-शास्त्र का भी अध्ययन करना चाहिए। कविता और कल्पना उसके भावों को प्रज्वलित करती हैं।

अच्छा गायक

अच्छा गायक बनने के लिए प्रकृति की मुख्य तीन विशेषताएँ—स्वर, योग्यता एवं बुद्धि का होना नितान्त आवश्यक है। इस कला को सीखने के लिए कितने समय की आवश्यकता है यह लगन और बुद्धि पर निर्भर है। एक वर्ष में ही अच्छा गायक बनने की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए।

इस कला के दो रूप हैं। प्रथम पूरी-पूरी स्वासें भरना और द्वितीय उस भरी हुई स्वास को आवश्यकतानुसार शनैः शनैः बाहर निकालने की क्षमता।

वॉयलिन के सिद्धहस्त पाश्चात्य कलाकार 'गैसिपी' ने एक बार अपने शिष्य को वॉयलिन के गज को पकड़ने के लिए उपदेश देते हुए लिखा था कि "तुम्हारा प्रथम अध्ययन तारों पर गज को ठीक प्रकार से साधना और उसे ठीक प्रकार से पकड़ने का होना चाहिए।"

यही बात स्वर के विषय में भी इस प्रकार कही जा सकती है कि स्वास का लेना और फिर उसे वाद्य के साथ ऐसे सधे रूप में मिलाना कि स्वास बिना टूटे और रुके, बाहर निकलते ही स्वर शुद्ध लगे, इसकी साधना करनी चाहिए।

आसान से आसान राग को सावधानी और चतुरता में गाना बड़ा ही दुखदाई मालुम पड़ता है। इसीलिए किसी कला को सीखने के लिए पहले विचार फिर सम्पादन और फिर अभ्यास आना चाहिए क्योंकि गलत तरीके से गाने की आदत है तो सही रास्ता केवल विचारों को प्राथमिकता देने पर ही मिल सकेगा।

अपने गलत स्वरों को पहिचानने की जो व्यक्ति क्षमता नहीं रखते उन्हें हतोत्साहित नहीं होना चाहिए, क्योंकि कितनी ही असफलताओं के पश्चात् सफलता अवश्य प्राप्त होती है। नवसिखिए को जहां तक सम्भव हो, एक-एक सरगम का घोर (जबरदस्त) रियाज करना चाहिये।

श्री गोविन्द राव टेंबे ने अपनी मराठी भाषा की पुस्तक 'मांझा सङ्गीत व्यासङ्ग' में एक स्थान पर साधना सम्बन्धी विचार व्यक्त करते हुए उल्लेख किया है कि "जब कभी किसी कार्य से मैं खाँ साहब अल्लादिया खां के घर के पास होकर गुजरता था तो उन्हें रियाज करते हुए पाता था। एक दिन रात्रि के साढ़े नौ बजे मैं एक महफ़िल में जारहा था तो उस समय खाँ साहब एक पल्टे का अभ्यास कर रहे थे। और जब रात्रि के ढाई-तीन बजे मैं उधर से होकर लौटा तो यह देखकर अवाक् रह गया कि खां साहब तब से अब तक अर्थात् लगातार पाँच घण्टे से उसी एक ही पल्टे पर अभ्यास कर रहे हैं।"

साधना की ऐसी चमत्कृत बातें सुनकर केवल दांतों तले उँगली दबाकर ही न रह जाना चाहिये अपितु पूर्व कलाकारों की तपस्या पर मनन करके उसे अपनाने का प्रयत्न भी करना चाहिये।

इस प्रकार के भी कितने ही लोग होते हैं जो यह सोचते हैं कि अब वे अच्छी तरह गाने में निपुण हो चुके हैं इसलिए सङ्गीतज्ञों की श्रेणी में शामिल हो जाना चाहिए जो कि श्रोताओं के आकर्षण का केन्द्र रहती है। वास्तव में यह उनकी अज्ञानता है और कुछ नहीं। मेहनत व कष्ट से बचने के लिए यह केवल बहाना मात्र है कि पूर्ण दक्षता उनके वश के बाहर है। उन्हें पण्डित

जवाहरलाल नेहरू के ये शब्द—"मनुष्य को अपनी पहुँच के बाह
भी प्रयत्न करना चाहिए" हमेशा याद रखने चाहिए।

निराश और अधीर विद्यार्थी कभी-कभी यह ग़लत सोच
लगते हैं कि अभी उन्होंने बहुत ही कम सीखा है और क्या
पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ? आदि…। यह सच है कि हम पूर्ण
पर कभी नहीं पहुँच सकते, परन्तु फिर भी अपनी इच्छाओं
दास बनने के बजाय हमें उन पर विजय प्राप्त कर, उन्नति की
अग्रसर होने का मूल सिद्धान्त अपने सामने रखना चाहिए; यद्य
ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जाते हैं, हमारा लक्ष्य उतना ही
हटता दृष्टिगोचर होता है।

नवसिखिओं को, उनकी यह धारणा कि वे अपने लक्ष्य
प्राप्त नहीं कर सकते अथवा उसको प्राप्त करने में असमर्थ
आधुनिक युग में उनकी उन्नति में बड़ी बाधक सिद्ध होती है
प्राचीनकाल में गुरुओं का अनुभव ही नियम था, किन्तु आजक
ग़लत विचार विद्यार्थियों को उन साधारण, लेकिन कठिन निय
और विधियों को सीखने से रोक देते हैं, जो कि सङ्गीत के गुर
आधार हैं।

माइक और स्वर

आजकल प्रायः गायक को माइक पर गाना पड़ता है। माइक पर सभी की आवाज ठीक नहीं उतरती। बहुत से गायक जो बिना माइक के बहुत अच्छा गा लेते हैं माइक पर उतना अच्छा नहीं गा पाते। उनकी आवाज अस्पष्ट और स्वर एक दूसरे में गुँथे हुए आते हैं। किन्तु आज के युग में बिना माइक के गाने के अवसर बहुत ही कम आते हैं। प्रत्येक संगीत सम्मेलन में माइक की व्यवस्था रहती है। छोटी से छोटी गोष्ठियाँ भी बिना माइक और लाउड स्पीकर के अपूर्ण सी रहती हैं। जहां एक ओर माइक में स्वर की बहुत सी कमजोरियां छिप जाती हैं वहां दूसरी ओर बहुत सी कमजोरियाँ उभर कर सामने भी आ जाती हैं। अतएव प्रत्येक नये गायक के लिए यह आवश्यक है कि वह माइक के बारे में प्रारम्भिक ज्ञान अवश्य प्राप्त करले।

जब से माइक का आविष्कार हुआ है, मनुष्य के स्वर का चमत्कार बहुत कुछ कम हो गया है। आज उसे बड़ी महफ़िलों में ऊँचे स्वर पर गाने की जरूरत नहीं है! इससे उसका बहुत कुछ अनावश्यक श्रम बच जाता है और उसका गला जल्दी नहीं थकने पाता। प्रारम्भ में नये गायक को माइक के सामने गाते हुए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) माइक को मुँह के बिलकुल नजदीक नहीं रखना चाहिए। माइक की दूरी मुँह से कम से कम १ फीट होनी चाहिए।

(२) गाते-गाते जब आप स्वर चढ़ायें तो इस दूरी को उसी अनुपात से बढ़ाते रहना चाहिये।

(३) जब आप धीमी आवाज में गा रहे हों तो मुँह को माइक के पास ला सकते हैं और धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों आवाज ऊँची होती जाय माइक से मुँह पीछे को हटाते ले जाइये। लेकिन श्रोताओं को आपकी इस क्रिया का आभास नहीं होना चाहिये, और इसी में आपकी चतुराई है।

शुरू-शुरू में इसमें कठिनाई प्रतीत होती है और प्रायः कभी-कभी आवाज अनावश्यक रूप से धीमी और कभी तेज हो

जाती है। एक दूसरा तरीका यह है कि आप एक ही स्थान पर बने रहिए और गाने से पहले माइक की दूरी तय कर लीजिये और फिर उसे बनाये रखिये। किन्तु ऐसा करने से गायक स्वतंत्रता से भाव प्रदर्शन नहीं कर सकता और उसके गायन का बहुत कुछ प्रभाव नष्ट हो जाता है। अतएव बेहतर यही है कि माइक की दूरी पर अधिकार प्राप्त करने की कोशिश की जाय क्योंकि आप यदि पत्थर के बुत की भांति सीधे एक ही स्थिति में बैठकर गायेंगे तो आपके गायन का बहुत कुछ सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा। अभिनय और भाव प्रदर्शन गायन का अभिन्न अङ्ग हैं। ये गायन के अलंकार सदृश्य हैं। जब गायक हृदय से गाता है तो यह स्वाभाविक है कि गायन के साथ उसका शरीर भी झूम उठे।

शुरू-शुरू में माइक पर गाने में अपनी आवाज बड़ी Confused अस्पष्ट सी लगती है। नये गायक को इससे घबरा-नहीं जाना चाहिए बल्कि स्वर को थोड़ा ऊँचा-नीचा करके मालूम कर लेना चाहिए कि किस सतह पर उसका स्वर मधुर प्रतीत हो रहा है और फिर उसी सतह को आधार बनाकर गाना चाहिए।

कुछ लोगों की आवाज माइक में साफ और अच्छी नहीं आती। यूँ बिना माइक के उनकी आवाज काफी मधुर लगती है। ऐसे गायकों को चाहिए कि वे (१) यह सम्भावना देखें कि थोड़ा बहुत आवाज को बनाने से माइक पर उनकी आवाज सुन्दर आती है या नहीं यदि ऐसा है तो फिर उन्हें उसी आवाज पर अभ्यास करना चाहिए। प्रायः सभी गायक थोड़ा-बहुत आवाज बनाते हैं। कुछ आवश्यकता से विवश होकर और कुछ फैशन में। आवाज बनाकर गाना अच्छा नहीं है किन्तु उस सूरत में जबकि ऐसा किये बिना काम न चल सके यह क्षम्य है। (२) यदि माइक में

आवाज ठीक नहीं आती तो ऐम्प्लीफायर का Volume और Tone कम से कम कर देना चाहिये और तब खुले गले से गाना चाहिए । (३) यदि माइक पर आवाज जरूरत से ज्यादा गूँजती है तो माइक को अपेक्षाकृत ज्यादा दूरी पर रखना चाहिए।

माइक पर गाते समय प्रायः कुछ गाने वाले स्वयं इतना झूमने लगते हैं कि माइक के range (क्षेत्र) से बाहर होजाते हैं और गायन के बीच-बीच में उनका गायन टूट जाता है। शुरू ही से इन दोषों से बचने का अभ्यास करना चाहिए।

मंच पर—

गायक को मंच पर जो चीजें हर समय अपने साथ रखनी चाहियें वे संक्षेप में यहां दी जाती हैं।

पिपरमेंट, लौंग, इलायची और सुगन्धित रूमाल।

गाना प्रारम्भ करने के पूर्व लौंग चबाने से गला खुल जाता है और गाते हुए उसमें शुष्कता नहीं आने पाती। पिपरमेंट और इलायची का भी यही उपयोग है; ये दवायें मुख को तर रखती हैं। सुगन्धित रूमाल मानसिक वातावरण (Mood) तैयार करने में सहायक होते हैं, गाने को जी चाहता है।

कुछ गायक गाने के पूर्व मुँह में पान की गिलौरियां ठूँस लेते हैं तथा बीच-बीच में भी पान उठा-उठाकर खाते रहते हैं। उनकी देखा-देखी नये गायकों में यह धारणा उत्पन्न होजाती है कि शायद पान खाने से स्वर मीठा होता है। पान के साथ कुलंजन और मुलेठी खाने से स्वर को बहुत कुछ सहायता अवश्य

पहुंचती है किन्तु अधिक पान खाने से उसकी आदत पड़ जाती है और बार-बार गाते हुए गला सूखने लगता है। कभी-कभी पान की पीक या सुपारी के कण श्वास की नली में चले जाते हैं, फलस्वरूप गाते समय खांसी आने लगती है और गले में खुरखरी पैदा हो जाती है। गाते समय पान खाने की आदत पड़ जाने से बार-बार गाने में बाधा पड़ती है और गायन की तन्मयता भंग हो जाती है। कुछ लोग मुँह तर करने के लिए सुपारी भी मुँह में रख लेते हैं किन्तु ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। सुपारी से आवाज खराब हो जाती है। गायकों को इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए।

अभिनेता और आवाज—

इस पुस्तिका में विस्तार से रंग मंच पर विचार करना सम्भव नहीं है किन्तु स्वर साधना के जितने अभ्यास (संगीत सम्बन्धी अभ्यासों को छोड़कर) दिये गये हैं वे सब भावी अभिनेताओं के लिए भी हैं। यहां संक्षेप में विशेष रूप से मंच पर काम करने वाले अभिनेताओं के लिए कुछ सुझाव दिये जारहे हैं।

सफल अभिनय Movement गति, Expression हाव-भाव और delivery सम्वाद बोलने का कलात्मक सम्मिश्रण है। सफल अभिनय के लिए अपने स्नायुओं, मुख की मांस पेशियों तथा भावों पर अधिकार का जितना महत्व है उससे कम स्वर के अधिकार का नहीं है। आजकल रेडियो एकांकियों तथा रेडियो नाटकों में तो हावभाव का स्थान भी स्वर ही ने ले लिया है। अभिनेता को सिर्फ विभिन्न भूमिकाओं को करने के लिए वेशभूषा और हाव-भाव ही नहीं बदलने पड़ते बल्कि आवाज भी बदलनी पड़ती है।

अभिनेताओं को स्वर साधना के बाद सबसे आवश्यक विभिन्न व्यक्तियों की आवाज़ की नक़ल करने का अभ्यास करना है। सफल अभिनेता एक सफल नक़लची या विदूषक भी होता है। अभिनेताओं के समस्त अभ्यास एक बड़े दर्पण (आईने) के सामने होने चाहिए ताकि आवाज़ के साथ-साथ हाव-भावों पर भी ग़ौर किया जा सके।

रेडियो नाटकों में भाग लेने वाले कलाकारों को तो हाव-भाव प्रदर्शित करने का मौक़ा भी नहीं रहता। उनके सम्वाद की बहुत कुछ सफलता अच्छी लोचदार आवाज़ और अच्छे निर्देशक पर निर्भर रहती है।

प्रदर्शन से पूर्व

आप गायक हों अथवा वक्ता अपने प्रदर्शन से पूर्व आपको कुछ आवश्यक तथ्यों पर भी ध्यान देना पड़ेगा जो कि आमतौर पर लोग नहीं देते। यदि इन तथ्यों को विचारपूर्वक मनन करके आप उपयोग में लायेंगे तो निस्सन्देह अपनी कला को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता रक्खेंगे।

गायन के बीच की सांस—

गायन के बीच-बीच में जिस सांस की हमें आवश्यकता पड़ती है उसकी ओर ध्यान दीजिए। आप देखेंगे कि उस समय आप मुँह से सांस लेते हैं क्योंकि नाक से सांस लेना असम्भव सा प्रतीत होता है और यदि उद्यत होकर नाक से सांस लें भी तो ऐसा करना बड़ा भद्दा लगता है क्योंकि गाने का क्रम असम्बद्ध (टूटा हुआ) सा लगता है।

ऐसी दशा में न तो केवल नाँक से ही सांस लेनी चाहिए और न केवल मुँह से ही, बल्कि नाँक और मुँह दोनों से समान रूप से हवा खींचने की चेष्टा करनी चाहिए और अधिकतर नाक से ही हवा, मुँह की अपेक्षा, अधिक खिंचे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। कुछ समय पश्चात् आप देखेंगे कि गाने के बीच आप में नाक से ही सांस खींचने की अपूर्व क्षमता है। जबकि प्रारम्भ में ऐसा करने से आपको मुँह बन्द करने की आवश्यकता पड़ती थी।

आपने देखा होगा कि गली के संपेरे जब सांपों का तमाशा दिखाते समय अपना बीन बजाते हैं तो बिना मुँह को इधर-उधर हटाये निरंतर बजाते रहते हैं। साधारण

अभिनेताओं को स्वर साधना के बाद सबसे आवश्यक विभिन्न व्यक्तियों की आवाज़ की नक़ल करने का अभ्यास करना है। सफल अभिनेता एक सफल नक़लची या विदूषक भी होता है। अभिनेताओं के समस्त अभ्यास एक बड़े दर्पण (आईने) के सामने होने चाहिए ताकि आवाज़ के साथ-साथ हाव-भावों पर भी ग़ौर किया जा सके।

रेडियो नाटकों में भाग लेने वाले कलाकारों को तो हाव-भाव प्रदर्शित करने का मौक़ा भी नहीं रहता। उनके सम्वाद की बहुत कुछ सफलता अच्छी लोचदार आवाज़ और अच्छे निर्देशक पर निर्भर रहती है।

अभिनेताओं को स्वर साधना के बाद सबसे आवश्यक विभिन्न व्यक्तियों की आवाज़ की नक़ल करने का अभ्यास करना है। सफल अभिनेता एक सफल नक़लची या विदूषक भी होता है। अभिनेताओं के समस्त अभ्यास एक बड़े दर्पण (आईने) के सामने होने चाहिए ताकि आवाज़ के साथ-साथ हाव-भावों पर भी ग़ौर किया जा सके।

रेडियो नाटकों में भाग लेने वाले कलाकारों को तो हाव-भाव प्रदर्शित करने का मौक़ा भी नहीं रहता। उनके सम्वाद की बहुत कुछ सफलता अच्छी लोचदार आवाज़ और अच्छे निर्देशक पर निर्भर रहती है।

प्रदर्शन से पूर्व

आप गायक हों अथवा वक्ता अपने प्रदर्शन से पूर्व आपको कुछ आवश्यक तथ्यों पर भी ध्यान देना पड़ेगा जो कि आमतौर पर लोग नहीं देते। यदि इन तथ्यों को विचारपूर्वक मनन करके आप उपयोग में लायेंगे तो निस्सन्देह अपनी कला को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता रक्खेंगे।

गायन के बीच की सांस—

गायन के बीच-बीच में जिस सांस की हमें आवश्यकता पड़ती है उसकी ओर ध्यान दीजिए। आप देखेंगे कि उस समय आप मुँह से सांस लेते हैं क्योंकि नाक से सांस लेना असम्भव सा प्रतीत होता है और यदि उद्यत होकर नाक से सांस लें भी तो ऐसा करना बड़ा भद्दा लगता है क्योंकि गाने का क्रम असम्बद्ध (टूटा हुआ) सा लगता है।

ऐसी दशा में न तो केवल नाँक से ही सांस लेनी चाहिए और न केवल मुँह से ही, बल्कि नाँक और मुँह दोनों से समान रूप से हवा खींचने की चेष्टा करनी चाहिए और अधिकतर नाक से ही हवा, मुँह की अपेक्षा, अधिक खिंचे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। कुछ समय पश्चात् आप देखेंगे कि गाने के बीच आप में नाक से ही सांस खींचने की अपूर्व क्षमता है। जबकि प्रारम्भ में ऐसा करने से आपको मुँह बन्द करने की आवश्यकता पड़ती थी।

आपने देखा होगा कि गली के संपेरे जब सांपों का तमाशा दिखाते समय अपना बीन बजाते हैं तो बिना मुँह को इधर-उधर हटाये निरंतर बजाते रहते हैं। साधारण

हां, तो मैं कह रहा था कि प्रदर्शन से पूर्व कलाकार को किसी खुले स्थान पर जाकर कुछ देर तक नाड़ियों को विश्राम देना चाहिए ताकि एक शक्ति का संचय हो सके। किसी बिस्तर पर थोड़ी देर विश्राम करने को मिल जाय, तो यह भी बहुत अच्छा है। इस समय इधर-उधर की बातों से ध्यान हटाकर कुछ गुनगुनाते भी रहना चाहिए ताकि स्वरयन्त्र के तार, प्रदर्शन के लिये उपयुक्त व तैयार हो जायें। बल्कि यों समझना चाहिए कि ऐसा करने से स्वरयन्त्र का रिहर्सल हो जाता है और उससे गायक के हृदय को कला-प्रसारण से पूर्व पूर्ण सन्तोष हो जाता है। आस-पास कोई व्यक्ति हो तो युक्ति से इधर-उधर घूमकर कुछ छोटे व्यायाम और साधारण सांस व्यायाम करके दोनों नथुओं से ६-७ बार तेज सांस (धक्के के साथ) निकाल कर साफ अवश्य कर लेना चाहिये।

अवयव बंधन—

आप पतलून पहनते हों, धोती बांधते हों अथवा पायजामा आदि कुछ भी पहनते हों; प्रदर्शन से पूर्व देख लीजिये कि कमर पर उसका बंधन कस कर तो नहीं बँधा है। यदि कस कर बँधा होगा तो उससे कला में सूक्ष्म अन्तर होने का डर है, क्योंकि सांस को पूरी आजादी नहीं मिलेगी।

इसी प्रकार गले पर टाई, गलूबन्द आदि ढीला कर लेना चाहिए। इनका उपयोग यदि बिलकुल न किया जाय तो अच्छा है।

गंतव्य स्थान तक—

प्रदर्शन के लिये जब आप गंतव्य स्थान तक किसी मोटर, रेल, गाड़ी अथवा अन्य किसी सवारी द्वारा जायें तो वह

ध्यान रखिये कि रास्ते में किसी से अधिक बातचीत न हो। इससे स्वर-तार या स्वररज्जु (Vocal Cords) में चिढ़चिढ़ापन आ जाता है।

कलाकार और नींद—

कलाकारों को नींद पूरी लेनी चाहिए। सङ्गीत आदि के कार्यक्रम अक्सर रात्रि में ही होते हैं और उस समय जागरण करना पड़ता है। फिल्मों के पार्श्व गायकों को भी इस सम्बन्ध में बहुत सजग रहना चाहिए, क्योंकि उन्हें भी बहुत जागरण तथा परिश्रम करना पड़ता है। यदि रात्रि को नींद पूरी न हो तो दिन में उसकी पूर्ति अवश्य कर लेनी चाहिए। ध्यान रहे कि शयनकक्ष की खिड़कियां या रोशनदान अवश्य खुले रहें। बन्द कमरे में सोना या आराम करना स्वर-साधक के लिये वर्जित है।

कलाकार और मूड—

बहुत से कलाकार कार्यक्रम से पूर्व तम्बाकू खा लेते हैं और कई सिगरेट एक साथ पी डालते हैं। ऐसा करने से वे समझते हैं कि मूड अच्छा बन जायगा, किन्तु इसका उल्टा ही प्रभाव होता है, क्योंकि गले में खुश्की आ जाती है और स्वर की सम्पूर्ण मधुरता नष्ट हो जाती है। उस समय तो गला तर रखने के लिये प्रयत्न करना चाहिए।

हल्का अल्कोहल लेना इस दिशा में सर्वोत्तम है जो कि दवाई का काम करता है और सुस्ती आदि को जड़ से भगा देता है। लेकिन इसकी अधिक आदत या मात्रा खतरनाक सिद्ध होती है और उससे गला सूख जाने के

कारण बिलकुल विपरीत प्रभाव पड़ता है। बल्कि गायक अनुभव करता है कि अभी और चाहिए। अतः इस दिशा में संयम और समझदारी से काम लेने में ही लाभ हो सकता है।

स्वर साधक और जन्मभूमि—

बहुत से स्वर साधकों की जन्मभूमि ऐसी जगह होती है जहां कि हर समय या अधिकतर बादल छाये रहते हों अथवा कुहरा रहता हो। ऐसे स्थान स्वर साधक के लिये अच्छे नहीं होते, लेकिन जन्म भूमि त्यागने की अपेक्षा उसके लिये और कोई उपाय नहीं! हां, बहुत से शहरों अथवा पहाड़ी इलाकों में जहां कि कभी-कभी बादल इतने घने छा जाते हैं कि वे कमरों में भी आने लगते हैं तो इसको निम्न उपाय करके दूर कर देना चाहिए:-

एक प्याले में पानी भरकर और उसमें कुछ यूकेलिप्टस (Eucalyptus) मिलाकर आग के सामने इसको रख देने से कमरे के अन्दर भरा हुआ कुहरा नष्ट हो जाता है और इससे स्वर साधक अपनी रक्षा कर सकता है क्योंकि कुहरा स्वर के लिये हानिप्रद होता है। इसी प्रकार रात्रि को अथवा दिन को सोते समय यदि कुहरा तंग करे तो तकिये पर यूकेलिप्टस की कुछ बूंदें डाल लेनी चाहिये, इससे कुहरे का प्रभाव बहुत कुछ नष्ट होजायगा।

भीड़ का प्रभाव—

बहुत से लोग अकेले में अथवा एक-दो व्यक्तियों की साथ संगत के साथ तो भली प्रकार गा लेते हैं, लेकिन यदि इनकी संगत के लिये कुछ अधिक वाद्य वादकों का समूह बैठा दिया

जाय; जैसा कि अक्सर नये पार्श्व गायक, रेडियो गायक तथा नाटक गायकों के साथ होता है, तो वे हतोत्साहित (Nervous) हो जाते हैं। इसी प्रकार भाषणकर्ता भी रेडियो पर, नाटक के पीछे अथवा थोड़ी सी भीड़ में तो भली प्रकार बोल लेते हैं, लेकिन विशाल जनसमूह के समक्ष जब उनको आना पड़ता है तो वे अच्छे वक्ता होने पर भी हिचकिचा कर या कम बोल पाते हैं। ऐसी दशा में मनःस्थिति पर क़ाबू पाने में ही सफलता मिल सकती है। कुछ अनुभवी व्यक्तियों का स्पष्ट शब्दों में कहना तो यह है कि मंच पर पहुंचते ही वक्ता या गायक को चाहिये कि वह सब को अपने सामने बुद्धू समझ ले। इस प्रकार की भावना उसके लिये वरदान सिद्ध होगी।

अक्सर देखा जाता है कि जो कलाकार दत्त चित्त, स्वस्थ मस्तिष्क, मुक्त हृदय और प्रसन्न मुद्रा में कला प्रदर्शन करते हैं वे सफल होने के साथ-साथ जनता पर भी अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

उपच्छाया

पुनरावृत्ति—

प्रस्तुत पुस्तक में किसी विशेष विषय पर पाठकों को पुनरावृत्ति का आभास भी हो सकता है किन्तु इन पुनरावृत्तियों का उद्देश्य भी कुछ है, और यह यह कि एक बात का दुबारा जिक्र करके उस विषय विशेष पर पाठकों का ध्यान केन्द्रित रखना।

मतान्तर—

संगीत-स्वर उत्पन्न करने के लिये विभिन्न मत और विधियां प्रचलित हैं, अगर यह बात पूर्ण रूप से समझ में आजाय तो विभिन्न मत मतान्तरों का समाधान भी हो जाय। इन मतान्तरों के कारण ही उचित दिशा में सही निर्देश पाने से हम वंचित रह जाते हैं अतः इस विषय की विभिन्न पुस्तकों व ग्रन्थों का अवलोकन कर मैं जिस छोटी सी पुस्तिका को प्रयास सहित लिख पाया हूँ, यह भावी स्वर विशेषज्ञों और विद्यार्थियों के हृदयों की हल-चल को पर्याप्त सीमा तक शांत करने में सहायक होगी ऐसा मेरा विश्वास है। अवलोकित ग्रन्थों व पुस्तकों आदि की सूची इस प्रकार है:—

सूची—

Voice Song and Speech	Emil–Behnke and Lennox Browne
The Child's Voice	Emil–Behnke and Lennox Browne
Science and Art of Indian–Music	Rai Bahadur R. L. Batra
A Key to Speech and song	Barbara Storey
A Key to Opera	Frank Howes
Music Ho !	Constant Lamberd
Ngoma	Hugh T. Trecy
Youth and Music	Desmond Macmahon
Plain words on Singing	Villiam Shakes Peare
Ordeal by Music	R. Nettel
The Technique of Singing	Kate Emil–Behnke
The Art of Vocal–Expression	The Rev. Charles (
The Central Point in Beautiful Voice Production	H. Travers. A.
Speech Distinct and Pleasing	Frank Philip
Simplicity & Naturalness in Voice Production	E. Wareham
Voice Production for Elocution and Singing	Rev. E. H. Melling
The throat in its relation to Singing	White fıld

Title	Author
Vocal Science and Art	Rev. Chas. Gib
Physical Development in Relation to Perfect Voice Production	H. Travers, Adms
History of Music	Masine
How to teach good Singing	Edam Heeler
Hygiene of the Vocal Organs	Morell Mackenzie
Voice Culture	×
The Daily Life of the Voice User—	×
Singer's Difficulties	Kate Emil-Behnke
Speech and Movement on the Stage	" "
Stammering, Cleft-Palate Speech, Lisping	" "
The Technique of good Speech	" "
Breathing for Health, Athlatics, Sport	" "
The Speaking Voice	Mrs. Emil-Behnke
Voice Training Primer	" "
The Mechanism of the Human Voice	Emil-Behnke
Voice Training Exercises-Emil	Behnke and C. W. Pearce
Voice Training Studies	" "
माझा सङ्गीत व्यासङ्ग	गोविन्दराव टेंबे
हि. सं. प. क्रमिक पुस्तक मालिका	वी. एन. भातखण्डे
सङ्गीत कलाविहार	(मासिक पत्र)
सङ्गीत	(मासिक पत्र)
सङ्गीतांजलि	ओंकारनाथ ठाकुर

सङ्गीत कलाधर	डायालाल शिवराम
सङ्गीत चिंतामणि	मूलजी ज्येष्ठाराम व्यास
वृन्द.	×
कल्याण	(मासिक पत्र)
चरक	महर्षि चरक
निघण्टु रत्नाकर	×
वनौषधि चन्द्रोदय	×
वनौषधि दर्शिका	बलवन्तसिंह
आरोग्य प्रकाश	रामनरायन शर्मा
भाव प्रकाश	भावभट्ट
सरल शरीर विज्ञान	बी. सी. रॉय.
आयुर्वेद प्रदीप	राजकुमार द्विवेदी
अभिनव बूटी दर्पण	रूपलाल जी वैश्य
कम्पैरेटिव मेटिरिया मेडिका	×
स्वास्थ्य शिक्षा	दयाशंकर पाठक
आरोग्य विज्ञान	हनूमान प्रसाद शर्मा
भोजन और स्वास्थ पर म. गांधी के प्रयोग	×
स्वास्थ्य और जल चिकित्सा	केदारनाथ गुप्त
हम सौ वर्ष कैसे जीवें ?	"
फल उनके गुण तथा उपयोग	×
आरोग्यता	बलवन्त सिंह
सरल शरीर विज्ञान	जानकी शरण वर्मा
हमारा स्वर मधुर कैसे हो ?	रामरत्नाचार्य

इनके अतिरिक्त श्रीमती अन्नपूर्णा देवी, पं० रामचन्द्र जी वैद्य, डा० एम० सी० सरकार, डा० गोकुल चन्द्र जी वर्मन तथा अभिन्न हृदय मित्र श्री दयानन्द 'अनन्त' व श्री मधुसूदन शरण 'बेदिल' का भी मैं हार्दिक आभारी हूं जिन्होंने मुक्त हृदय से मेरे इस प्रयास को सफल बनाने में सहायता दी है। यदि स्वर साधक इस पुस्तक की प्रतिक्रिया से सूचित करते रहें तो मुझे अतीव प्रसन्नता होगी।

हाथरस (उ० प्र०)
दिनांक १ सि० १९५५

संगीत कार्यालय